धर्म-दर्शन-विज्ञान प्रवेशिका

(पुष्प-द्वितीय)-कविताओं से सवंर्धित

लेखक व कवि-वैज्ञानिक श्रमणाचार्य

श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

द्रव्यदाता (ज्ञानदानी)

पुण्य स्मृति शेष श्री भगवतीलाल जी वालावत

धर्मपत्नी श्रीमती गुणमाला देवी

पुत्रवधु एवं पुत्र श्रीमती चेतना देवी, चन्द्रेश जैन

पौत्र एवं पौत्री चित्रांश, शिवानी जैन नृसिंहपुरा,

बड़गाँव, उदयपुर (राज.)

सप्तम संस्करण - 2015 मूल्य रू. 51/-

प्रतियाँ - 2000

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान:

आचार्य श्री कनकनन्दी जी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

1. धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा-श्री छोटुलाल जी चित्तौड़ा, चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर, आयड़ बस स्टॉप के पास, उदयपुर (राजस्थान)-313 001, मोबाईल 91 97832 16418
2. डॉ. नारायणलाल कच्छारा, सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रविन्द्रनगर, उदयपुर उदयपुर (राजस्थान)-313 001, फोन नंबर- 0294-2491422, मोबाईल 91 92144 60622

e-mail : nlkachhara@yahoo.com

श्री गणाधिपति गणधराचार्य कुन्थुसागर विद्या शोध संस्थान

हातकणंगले-रामलिंग, श्री कुन्थुगिरी, मु. पो. आळते-416 123

जा. हातकणंगले, जिला कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

जावक सं. दिनांक: 29-10-2014

श्री

श्री आ. कनकनन्दी जी महाराज को ग. आ. कुन्थुसागर का प्रतिनमोस्तु। आपका रत्नत्रय अच्छा होगा, मेरा भी यहाँ अच्छा है। आपने जो पुस्तकें भेजी सो विषय पसंद आया। आप एक अच्छे कवि और लेखक हैं, निर्गंथाचार्य हैं। समय समय पर साहित्य प्रकाशित होता रहता है जिनकी समाज में अच्छी कीर्ति है, अच्छी छाप है। आप एकमेव वैज्ञानिक आचार्य हैं। आप इसी तरह पुस्तकें लिखते रहें। आपका स्वास्थ्य ठीक रखिये ऐसा आशीर्वाद देता हूँ।

और सब ठीक है ।

ग.आ. कुन्थुसागर

29-10-2014

ईष्ट प्रार्थना एवं मंगल स्मरण

हे प्रभु सद्ज्ञानदाता

रचनाकार-आचार्य कनकनन्दी गुरूदेव

तर्जः-(1) आपकी भक्ति से... (2) हे प्रभु आनन्ददाता....(3) ओ जगत के शान्ति

हे प्रभु सद्ज्ञानदाता, प्रज्ञा मुझे भी प्राप्त हो।
उस ही ज्ञान से मेरा दुर्गुण, शीघ्रता से नाश हो।। हे प्रभु... (टेक)
सत्यग्राही न्यायवंत धैर्यशाली मैं बनूँ,
स्वावलम्बी श्रमशील ध्यान योगी मैं बनूँ,
शोध बोध ज्ञान करूँ मैं दया धर्म सादा पालूं,
आत्मकल्याण के द्वारा विश्व कल्याण भी करूँ।।
सत्यं शिवं सुन्दर स्वरूप को मैं हिये नित ही धरूँ। हे प्रभु.... उस ही
सर्व जीव संसार में जिये औरों को भी जीने दों,
परोपकार से युक्त ही कर जीव भी जयवन्त हो,
आत्मवत व्यवहार सदा सर्वथा सबसे रहे
गुण-गुणी समादर भी हो जयवंत सर्व जीव रहे,
द्रव्य क्षेत्र काल भाव सर्व जीव सुखी रहे।। हे प्रभु.... उस ही

आरती देव-शास्त्र-गुरु-धर्म-भाव भी

रचनाकार-आचार्य कनकनन्दी गुरूदेव

तर्जः-(1) इस विधि मंगल ... (2) प्रथम तुला वन्दितो कृपाला (मराठी)...

जय-जय आरती शुभ आरती, जय मंगलमय दिव्य आरती।।
जय आरती केवलज्ञान के धारी, जय घातिनाशक भवभयहारी।।
जय आरती ज्ञानघन शरीरी, जय सच्चिदानन्द आत्मविहारी।। जय ...
जय आरती आचार्य गुरू की, जय संघनायक यतिवरों की।
जय आरती उपाध्याय गुरू की, जय ज्ञानदायक मुनीश्वरों की।। जय ....
जय आरती साम्यधारी मुनि की, जय आत्मसाधक गुरूवरों की।
आरती जिनवाणी ज्ञानदात्री की, केनलज्ञानी सुता सरस्वती की।। जय ..
आरती रत्नत्रय दशधर्म की, स्व-पर विश्व शान्ति धर्मो की।
आरती शुभ शुद्ध भाव कर्म की, स्वर्ग मोक्ष दायक भावों की।। जय ..

स्वाध्याय तपस्वी गुरूवर निराले
आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के
व्यक्तित्व-कृतित्व-वैशिष्ट्य

चालः-मेरे नैना सावन भादो .... (भावानुमोदक-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर)

हे ! विश्व गुरू कनकनन्दी...... स्वाध्याय तपस्वी हैं आला 2
(सारे जहाँ ने है जाना/सुविज्ञजनों ने है माना) ध्रुवपद ....
बचपन से अध्ययनशील ..... मनन चिन्तनशील
वैज्ञानिक सन्त नायक .... है! अध्यातम योगी
कल्पनाशील अन्वेषी ..../(सनम्र सत्याग्रही)
अभीक्ष्ण ज्ञान उपयोगी .... आगम-निगम बखानी 2
है! विश्व गुरू..... (1)
प्राचीन गुरूकुल ऋषि ...... आधुनिक विज्ञान मनीषी ...
धर्म-दर्शन-विज्ञान समन्वित ..... रत्नत्रय के धारी ...
विज्ञान दृष्टि धारी ....
नवाचार युग परिवर्तन का ..... उपलब्धि अतिभारी 2
है! विश्व गुरू..... (2)
गद्य-पद्य मय ..... साहित्य सृतन करें .....
द्विशताधिकशास्त्र रचे हैं..... युग परिवर्तनकारी ......
अत्यन्त हितकारी .....
आधुनिक विज्ञान परे है ..... जैन तथ्य शोधकारी 2
है! विश्व गुरू..... (3)
स्वाध्याय तप किया ... अहर्निश अद्यम किया ....
किरणें ऐसी निकली ज्ञान की ... कर दिया जग उजियारा ....
वैश्विक ज्ञान प्रसारा ....
कितने पावन कितने त्यागी .... 'सुविज्ञ' मन भर आया
है! विश्व गुरू..... (4)

आरती ज्ञानगुण भण्डारी गुरूवर कनकनन्दी जी की
रचयित्री-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती माताजी
चालः-अम्बे जय जय तगदम्बे काली ..जय दुर्गे खप्पर वाली...हम सब उतारे ..

कनकनन्दी गुरूवर ज्ञानी ... आत्मिक गुणों /(ज्ञान) के धारी ...
हम सब उतारे तोरी आरती .... हो गुरूवर / (ऋषिवर)
हम सब उतारे तोरी आरती .... (ध्रुव)
अष्टमातृका पालक गुरूवर .... रत्नत्रय के अधारी ...
सुख आनन्द को देने वाले .... दुःख समूह के हारी 2
ज्ञानामृत पिला दो ऋषिवर .... ज्ञान के हो भण्डारी ....
हम सब उतारे तोरी आरती .... हो गुरूवर ..... (1)
ऊँचे लक्ष्य के धारी गुरूवर .... सिद्धान्त के हैं ज्ञाता 2
अलौकिक गणित के ज्ञाता ..... भव्य जीवों के त्राता 2
तेरी शरण में तो भी आता ... उसे मिले सुख-साता ....
हम सब उतारे तोरी आरती .... हो गुरूवर ..... (2)
ब्रह्माण्ड के द्रव्यों को जाने ... व्यापक ज्ञान धरे हैं 2
अनसुलझे रहस्य सुलझाये .... भ्रम तम दूर करें है 2
'सुवत्सल' भाव जगावे ... सब मिल बजाओ ताली .....
हम सब उतारे तोरी आरती .... हो गुरूवर ..... (3)

धर्म-दर्शन विज्ञान शिविर का महत्व
आचार्य कनकनन्दी गुरूदेव
चालः-यह देश वीर जवानों का (भांगड़ा)

ये शिविर है धर्म दर्शल का .... विज्ञान गणित व नियमों /(नीति) का
इस शिविर का महत्व न्यारा है ..... बाल वृद्धों का प्यारा है .....
हो ओ ऽऽऽऽऽऽ हो ओ ऽऽऽऽऽऽ आ ऽऽऽऽऽऽ आ ऽऽऽऽऽऽ (स्थायी)
यहाँ धर्म-दर्शन-विज्ञान पढ़ें .... गणित नियमों के पाठ पढ़ें ...
यहाँ हर धर्म-जाति ..... हो ऽऽऽऽऽऽ यहाँ देश-विदेशी आते हैं .....
सत्य-तथ्य को पढ़ते हैं ... सहयोग शान्ति पाते हैं।
हो ओ ऽऽऽऽऽऽ हो ओ ऽऽऽऽऽऽ आ ऽऽऽऽऽऽ आ ऽऽऽऽऽऽ ...... (1)

कट्टरता रूढ़ि को त्यागते है... उदार सहिष्णु बनते हैं
दयादान सेवा करते हैं .... हो SSSSSS भाव विश्व कल्याण का भाते हैं ...
हो ओ SSSSSS हो ओ SSSSSS आ SSSSSS आ SSSSSS...... (2)
सदाचार नीति सीखते हैं.... सनम्र सत्यग्राही बनते हैं
महान् लक्ष्य को ..... हो SSSSSS समता शान्ति से पाते हैं
'कनक' गुरूवर से सीखते हैं ....
हो ओ SSSSSS हो ओ SSSSSS आ SSSSSS आ SSSSSS...... (3)
फैशन-व्यसनों को त्यागते हैं ..... व्यायाम ध्यान/(योग) सीखते हैं
तन-मन-आत्मा से होSSSS..... स्वस्थ्य सबल बनते हैं
मुक्ति के लिए यह करते हैं ......
हो ओ SSSSSS हो ओ SSSSSS आ SSSSSS आ SSSSSS...... (4)

जैन एकता तथा विश्व शान्ति

मंगल स्मरण

आचार्य कनकनन्दी(मंगल कीर्तन)

सत्य धर्म मंगलम्, आत्म धर्म मंगलम्।
जीव धर्म मंगलम्, विश्व धर्म मंगलम्।।
वस्तु तत्व मंगलम्, मोक्षमार्ग मंगलम्।
रत्नत्रय मंगलम्, सत्य श्रद्धा मंगलम्।।
सम्यग्ज्ञान मंगलम्, सदाचार मंगलम्।
सुध्यान मंगलम्, दशधर्म श्रद्धा मंगलम्।।
कर्मक्षय मंगलम्, मोक्षतत्व मंगलम्।
अरिहंत मंगलम्, सिद्धप्रभु मंगलम्।।
सूरीवर मंगलम्, उपाध्याय मंगलम्।
सर्वसाधु मंगलम्, जिनवाणी मंगलम्।।
आत्मशान्ति मंगलम्, विश्वशान्ति मंगलम्।
दयाधर्म मंगलम्, साम्यभाव मंगलम्।।
दानसेवा मंगलम्, शूचिधर्म मंगलम्।
मंगल ही मंगलम्, सदा सदा मंगलम्।।

विश्व शान्ति हेतु प्रार्थना

आचार्य कनकनन्दी

(तर्ज : हेछ्छ नीले गगन के तले, धरती का प्यार पले ......)

होऽऽऽ नीले गगन के तलेऽऽऽ सर्वत्र/(सर्वथा) शान्ति फैलेऽऽ
मानव हो या प्रकृति/(पशु) भी हो सदा ही शान्ति पाले ऽऽऽऽ..... स्थायी....
मानव मिलकर राष्ट्र में रहकर वैश्विक भाव धरें ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
मानव पशु पक्षी कीट या पतंग सबसे प्यार पले ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
कोई न अपना कोई न पराया वैश्विक कुटुम्ब पले ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
काहूँ न राग काहूँ न द्वेष सर्वत्र साम्य पले ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
जाति व पन्थ राष्ट्र के कारण काहूँ न बैर पले ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
अनीति अनादर पाप व अत्याचार कोई न ऐसा करे ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
हिंसा व भ्रष्ट्राचार शोषण व दूराचार ऐसा न कोई करे ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
प्रजा हो राजा नेता हो नागरिक सब में मैत्री पले ऽऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
प्राणी प्रकृति सम्यता संस्कृति सब में शान्ति झरे ऽऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
शोषक शोषित मजदूर मालिक वैषम्य भाव टले ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
प्रकृति शोषण संचय प्रदृषण कोई कभी न करें ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
ग्लोबल वार्मिंग भूकम्प अतिवृष्टि कहीं भी कभी न पले ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
सुनामी हीन वृष्टि ओजोन छेद भी विश्व से सभी टले ऽऽऽ...हो ऽऽऽऽ नीले गगन
सदा हो सदाचार भाव में शुद्धाचार वचन हित ही बोले ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
शरीर मन में वचन आत्मा में सदा ही शांति झरे ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
पर्यावरण की सुरक्षा हेतु सब संकल्प करें ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
धर्म व विज्ञान परस्पर मिलकर विश्व कल्याण करें ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
मेरा लक्ष्य है सत्य साम्यमय सुखामृत झरें ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन
'कनकनन्दी' का आह्वान विश्व को उदार भाव धरे ऽऽऽ....हो ऽऽऽऽ नीले गगन
वैश्विक समता शान्ति के हेतु है सभी प्रयास करें ऽऽऽ.... हो ऽऽऽऽ नीले गगन

एकता से विकास एकता हीन से विनाश
(संगठन में शक्ति विघटन में क्षति)
आचार्य कनकनन्दी
(राग : 1 आत्म शक्ति से........ 2. छोटी छोटी गैया ......)

एकता सूत्रों के स्वरूप को जानों, उसकी महान् शक्ति महचानो।
एकतामय है विकास (के) उपाय, विघटन है विनाश (के) आशय/(उपाय)
अनेकान्त में एकता समाहित, एकान्त में है एकता तिरोहित।
उदार सहिष्णु भाव में एकता, संकीर्ण कट्टर भाव (से) न एकता।।
परस्पर उपग्रहो एकता सिखाता, सहयोग द्वारा विकास होता।
वसुधैव कुटुम्ब है उदार भाव, स्वार्थपरता में अनुदार भाव।।
सद्भाव/(समन्वय) प्रेम से एकता बढ़ती, राग द्वेष से एकता घटती।
सत्य समता है एकता का प्राण, ईर्ष्या, घृणा से एकता का हनन।।
एकता हेतु क्षमा अपनाओं, सहज-सरलभाव मन में लाओ।
विनम्र मधु विराट बनो, भेद-भाव से ऊपर उठो।।
एकता में शक्ति है कलिकाल में, योग्यता शक्ति मन्द युग में।
तीर्थकर गणधर रिक्त काल में, शलाका अवतारी शून्य काल में।।
रेशा से जब रस्सी बनती, शक्तिशाली को भी बान्ध डालती।
प्रबल वेग से जब पानी बहता, चट्टानों को भी चूर्ण करता।।
धागा की एकता से वस्त्र बनता, ईटों के द्वारा महल बनता।
जल बिन्दुओं से समुद्र बनता, भौतिक विश्व अणु से बनता।।
एकताहीन से दुर्दशा होती, देश/(भारत) की गुलामी से शिक्षा मिलती।
एकताहीन न समाज होता, केवल भीड़ न समाज होगा।।
व्यक्ति समूह ही समाज होता, सद्भाव सहयोग/(एकता सद्भाव) सहिता होता।
एकता शक्ति से करो विकास, 'कनकनन्दी' को तुम्हें आशीष।
विश्वास ज्ञान चारित्रमय है, सम्यक् समन्वयमय मार्ग।।

जैन धर्म की एकता के सूत्र

आचार्य कनकनन्दी

(राग : विजयी विश्व तिरंगा प्यारा....., तुम दिल की धड़कन ....)

जैन धर्म की एकता को मानो, एकता योग्य सूत्र पहचानों।
एकता से प्राप्त लाभ को पाओ, विघटन हानि को कभी न पाओ।। ध्रु.
अनेकान्त व स्याद्वाद मनो, द्रव्य तत्व व पदार्थ जानो।
मोक्षमार्ग व मोक्ष पहचानो, तीर्थंकर व महामंत्र मानो।।
अनेकान्त है जैन सिद्धान्त, एकान्त दुराग्रह परे सिद्धान्त।
एकान्त दुराग्रह होता मिथ्यात्व, अनेकान्त बिना नहीं सम्यक्त्व।।
भाव अहिंसा है अनेकान्तवाद, वाचनिक अहिंसा होता स्याद्वाद।
समस्त जैन पंथों में मान्य, अनेकान्त व स्याद्वाद मान्य।।
अनेकान्त बताता अनन्त धर्म/(गुण), भाव अहिंसा व समन्वय/(समता)कर्म।
विरोध में अविरोध सिखाता, वैश्विक उदार भाव बताता।।
वचन पद्धति होता स्याद्वाद, कथन अनेकान्त होता स्याद्वाद(सप्त भेद)।
हित-मित-प्रिय समन्वय कथन,अर्पित अनर्पित/(सापेक्ष दृष्टि से) होता है कथन।।
षट द्रव्य सप्त तत्व समान, नव पदार्थ भी होते समान।
समस्त जैन पंथ में मान्य, इसी दृष्टि से एकता मान्य।।
मोक्ष का मार्ग है रत्नत्रयमय, द्रव्य तत्व व पदार्थमय।
रत्नत्रय की पूर्णता है मोक्ष, जैन मतों में यह प्रमुख।।
तीर्थंकर भी होते चौबीस, सभी को मान्य होते विशेष।
णमोकार मंत्र भी सभी को मान्य, महिता फल भी सभी को मान्य/महिता फल का करें सम्मान।।
आचार विचार में थोड़ा विभिन्न, काल व कर्म बने कारण।
पंचमकाल व विचित्र कर्म, जिससे बने पंथ विभिन्न।।
तथापि विद्वेष नहीं करणीय, समता एकता सदा पालनीय।
राग-द्वेष-मोह सर्व त्यजनीय, मैंत्री प्रमोद सम/(शम) भजनीय।।
अन्यथा विद्वेष विद्रोह बढ़ते, पाप ताप व पतन होते।
उभयलोक दुःख मय होता, मोक्ष के विलोम संसार बढ़ता।।
मत/(पंथ) में भले रहे भिन्नता, मन से विद्वेष त्यागो सर्वथा।
एकता प्रेम से करो विकास, 'कनकनन्दी' का तुम्हें आशीष।।

वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव प्रणीत वैज्ञानिक संगोष्ठी की महिमा...

महिमा सुमन अर्चक – श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल :1. सारे जहाँ से अच्छा....., 2. सायोनारा ....)

वैज्ञानिक संगोष्ठी .... परम विज्ञान वाली ...
कनक सूरी प्रणीत .... विश्व गुरुत्व वाली ..... (ध्रुवपद) ....
उद्देश्य इसके ऊँचे .... सत्य-साम्य-सुखकारी ....
धर्म-दर्शन-विज्ञान .... तीनों समन्वयकारी 2
वैश्विक दृष्टिधारी .... उदारता प्रदायी .... कनक सूरी प्रणीत ..... (1)

भौतिक एकान्त का तम .... होता है दूर इससे ....
अनेकान्त का प्रकाश .... होता प्रसार इससे 2
समावेश का आकाश ....होता है विश्वव्यापी ....कनक सूरी प्रणीत ..... (2)

वैश्विक होते प्रवक्ता .... सूरी कनकनन्दी ....
निश्रा में जिनकी पाते .... समाधान सर्व देशी 2
स्याद्वादमय वाणी .... होती प्रभावकारी .... कनक सूरी प्रणीत ..... (3)

मौलिक निराली होती .... प्रश्नोत्तर पद्धति ....
जिज्ञासु शोधार्थी को .... समाधान रूप होती 2
समीक्षाकारी वाणी ....जोड़ रूप ज्ञान होती ....कनक सूरी प्रणीत ..... (4)

पूर्वाग्रहों को त्यजकर .... 'सुविज्ञ' जन है आते ....
सनम्र सत्यग्राही .... बनते सुमार्गगामी 2
ऐसी विज्ञान गोष्ठी .... होती प्रभावशाली .... कनक सूरी प्रणीत ..... (5)

हिरणमगरी से. 11, उदयपुर , दि: 24.11.2014, मध्याह्न 2º35

-:: आचार्य श्रीकनकनंदी जी का संदेश ::-

(तर्ज : सागर किनारे, दिल ये पुकारे ....)

रचयित्री-चेतना जैन

गुरुवर पुकारे हमें हर घड़ी, मुक्ति मार्ग बतावें हमको सही।
आओ आओ जैन धर्म के अनुयायियों, साथ में है न उनके कोई छड़ी।।

लौट आओ भुला कर खतायें सभी, ज्ञान गंगा लुटा दूँ, अगर तुम कहो।
जंग से मुल्क जीते गये हैं सदा, प्यार से जीत लेता है दिल, हर कोई।।

ये तुम्हारी निगाहों में नफरत जो है, इसको चाहत बना दूँ, अगर तुम कहो।
खुद अपनी ही उलझन में उलझे हो क्यूँ, पूजा पाठ के नाम पर लड़ते हो क्यूँ।।
धर्म के ठेकेदारों सुन लो जरा, गलतफहमी मिटा दूँ, अगर तुम कहो।।

तुम्हे जिस दिन यकीन हो जायेँ, कनकनन्दी में खुबियाँ भी हैं।
धर्म-विज्ञान का पाठ पढ़ाकर तुम्हें, समयसार बतादूं, अगर तुम कहो।।

मुनिवर आये हैं, शहर सजने लगे, मैं भी घर को सजा दूँ अगर तुम कहो।
चेतना का वंदन है कनकनन्दी गुरु,भक्ति की लौ जगा दूँ,अगर तुम कहो।।

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रार्थना	
(1)	ईष्ट प्रार्थना एवं मंगल स्मरण - हे प्रभु सद्ज्ञानदाता	3
(2)	आरती देव-शास्त्र-गुरु-धर्म-भाव भी	3
(3)	स्वाध्याय तपस्वी गुरुवर निराले - आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के व्यक्तित्व-कृतित्त्व-वैशिष्ट्य	4
(4)	आरती ज्ञानगुण भण्डारी गुरुवर कनकनन्दी जी की	5
(5)	धर्म-दर्शन विज्ञान शिविर का महत्त्व	5
(6)	जैन एकता तथा विश्व शान्ति-मंगल स्मरण	6
(7)	विश्व शान्ति हेतु प्रार्थना	6
(8)	एकता से विकास,एकता हीन से विनाश (संगठन में शक्ति विघटन से क्षति)	7
(9)	जैन धर्म की एकता के सूत्र	8
(10)	वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव प्रणीत वैज्ञानिक संगोष्ठी की महिमा...	9
(11)	आचार्य कनकनन्दी जी का संदेश	10
2.	आत्म धर्म	
(1)	अहिंसादि पाँच धर्म	13
(2)	अहिंसा धर्म	13
(3)	सत्य धर्म	16
(4)	अचौर्य धर्म	17
(5)	ब्रह्मचर्य धर्म	18
(6)	अपरिग्रह धर्म	19
(7)	दिगम्बर जैन साधु के नग्नत्व का कारण	21
3	सप्त व्यसनों का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	
(1)	सप्तव्यसन के नाम	24
(2)	मद्य व्यसन	24
(3)	मांस व्यसन	25

	(4)	मांसाहार से हानि	25
	(5)	अण्डा शाकाहार नहीं	26
	(6)	प्राकृतिक रूप से मनुष्य शाकाहारी है	26
	(7)	मांस से रोग	27
	(8)	द्यूत व्यसन	30
	(9)	वेश्यागमन के दुष्परिणाम का वैज्ञानिक एवं धार्मिक विश्लेषण	30
	(10)	वेश्यागमन का दुष्परिणाम	31
	(11)	मैथुन हिंसा	32
	(12)	शिकार व्यसन	34
	(13)	चोरी व्यसन	34
	(14)	परनारी व्यसन	34
4	श्रावक के अष्ट मूलगुणों का वर्णन		
	(1)	मधु त्याग	36
	(2)	रात्रि भोजन त्याग का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण	36
	(3)	पंच फल विरति	37
	(4)	पंच गुरु भक्ति	38
	(5)	जीव दया	38
	(6)	जल छानकर पीने का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	39
	(7)	जल छानने की विधि	39
	(8)	छने पानी की मर्यादा	40
	(9)	दूध, दही, घी, मक्खन की मर्यादा	40
5	श्रावक के छ: दैनिक कर्म		
	(1)	देव पूजा	42
	(2)	गुरु सेवा	42
	(3)	गुरु सेवा का फल	42
	(4)	स्वाध्याय	43
	(5)	संयम	43
	(6)	तप	43

	(7) दान	43
	(8) आहार दान	43
	(9) औषधि दान	45
	(10) ज्ञान दान	45
	(11) अभयदान या वसतिका दान	45
	(12) दान फल	45
6	14 जीव समास	47
7	14 मार्गणा	50
8	14 गुणस्थान	54
9	जीव के सिद्धस्वरूप एवं ऊर्ध्वगमन स्वभाव	59
10	परिशिष्ट	
	(1) वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव प्रणीत वैज्ञानिक संगोष्ठी के संदर्भ में श्री मनोहरसिंह कृष्णावत के उद्गार (वक्तव्य)	64
	(2) ये मैं ही हुँ (कविता)	66

प्रथम परिच्छेद
आत्म धर्म

1. अहिंसादि पाँच धर्म

आत्मा में आगे लिखित समस्त धर्म पाये जाने के कारण एवं अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाने के कारण वे सब धर्म आत्म धर्म है। आत्म धर्म, सामान्य से एक होने पर भी पर्याय-अपेक्षा, परिभाषा-अपेक्षा, निमित्त-अपेक्षा, अवस्था-अपेक्षा से भिन्न-भिन्न हैं।

(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अचौर्य (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह ये पाँच आत्मा के धर्म हैं। इन पाँचों धर्म को, प्रत्येक धर्म तो कुछ अंश में एवं कुछ दृष्टिकोण से मानते हैं, परन्तु जैन धर्म में जिस प्रकार सांगोपांग वर्णन है उस प्रकार अन्य धर्मो में कम पाया जाता है।

अहिंसादि को पूर्ण रूप से पालन करना महाव्रत कहा जाता है और जो महाव्रत का पालन करते हैं उन्हें महाव्रती (साधु) कहते हैं। पाँच महाव्रत यथा-(1) अहिंसा महाव्रत, (2) सत्य महाव्रत, (3) अचौर्य महाव्रत, (4) ब्रह्मचर्य महाव्रत, (5) अपरिग्रह महाव्रत। साधारणतः गृहस्थ-नागरिक पूर्णरूप से पालन करने के लिये असमर्थ होते हैं क्योंकि परिवार चलाने के लिये एवं समाज में रहने के लिए कुछ न कुछ आरम्भ करना पड़ता है। इसलिये श्रावक (आदर्श नागरिक) आंशिक रूप से समाज के अविरोध, ध ार्म के अविरोध अहिंसादि अणुरूप में पालन करते हैं। पाँच अणुव्रत के नाम-(1) अहिंसाणुव्रत, (2) सत्याणुव्रत, (3) अचौर्याणुव्रत, (4) ब्रह्मचर्याणुव्रत, (5) परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ये पाँच अणुव्रत समग्रता से जीवनयापन करने के लिये, स्वस्थ परिवार के लिये, आदर्श समाज के लिये, उन्नत राष्ट्र के लिये अनिवार्य हैं। इनके बिना व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अस्त्त्वयस्त, अनुशासन विहीन, शांति, सुख, प्रेम, मैत्री, संगठन से रहित हो जाएगा। धर्म केवल एक बाह्य आडम्बर, मिथ्या परंपरा, रूढ़ि क्रियाकांड एवं काल्पनिक परलोक सुख के लिये नहीं है। धर्म से तो सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सबको सुख शांति मिलती है। जिस धर्म में या राष्ट्र में ये पाँच व्रत नहीं है वह धर्म या राष्ट्र टिक नहीं सकता है परन्तु निश्चय से अवनति एवं विलीनता को प्राप्त हो जावेगा।

2. अहिंसा धर्म

अकषाय भाव यत्र न च स्वपर पीडनम्।
सा अहिंसा अमृतमाता सर्व धर्मे प्रधानम्।।

जहाँ पर मानसिक दुर्विचार नहीं है और स्व-पर पीडन नहीं है वहाँ पर अहिंसा रूपी अमृत माता निवास करती है। अहिंसा सम्पूर्ण धर्म में प्रधान धर्म है।

यदि मन में किसी को कष्ट देने की भावना है और किसी कारणवश कष्ट नहीं दे पाये तो भी हिंसा का पाप लगेगा ही। जैसे एक डाकू दूसरों को फाईरिंग करके धन लूटना चाहता था, परन्तु निशाना चूकने के कारण सामने वाले व्यक्ति को निशाना नहीं लगा और वह बच गया, तो भी न्यायाधीश इस डाकू को दण्ड देगा, क्योंकि उसका मारने का इरादा था और एक उदाहरण लीजिये-एक धीवर मछली पकड़ने के लिये पानी में जाल डालता है किन्तु दिन भर बैठने पर भी मछली न पकड़े जाने पर भी हिंसा या अपराध का भागी होगा ही। इसलिये इस श्लोक में अहिंसा के लिये प्रथम एवं प्रधान शर्त अकषाय भाव कहा है।

यदि अन्तरंग में कषाय भाव अर्थात् दूषित परिणाम नहीं है परन्तु कारण वशात् किसी जीव का घात हो जाने पर भी हिंसा का या अपराध का भागी नहीं होगा। जैसे-महामुनि के, चार हाथ जमीन नीचे देखते हुये चलते समय कोई क्षुद्र प्राणी अकस्मात् पैर के नीचे दब कर मर जाने पर भी महामुनिराज दोष-अपराध के भागी नहीं है क्योंकि जीवों की विराधना मुझसे नहीं हो इस भाव को मन में रखते हुये अपनी तरफ से तो सावधानी (प्रयत्न) पूर्वक चल रहे थे। अथवा जैसे एक कृषक, खेत में कार्य करता है। हल जोतते समय अनेक जीवों का घात होता है तो भी उसे विशेष हिंसा का दोष नहीं लगेगा। किन्तु उद्योग जनित दोष लगेगा, क्योंकि उसके परिणाम जीव मारने का नहीं है किन्तु अनाज उत्पन्न करने का है। दयालु प्रामाणिक डॉक्टर, रोगी को निरोगी बनाने के लिये ऑपरेशन करता है किन्तु दैव से और आयु पूर्ण होने के कारण रोगी का मरण होने पर भी डॉक्टर को हिंसा को दोष नहीं लगेगा क्योंकि, डॉक्टर के परिणाम रोगी को बचाने के होते हैं, न कि मारने के।

जब कषाय भाव उत्पन्न होता है उस समय ही स्वात्मा ही हिंसा होती है भले फिर वह स्वयं की या अन्य की द्रव्य हिंसा करे या न करें।

आत्मघात करना स्वकीय द्रव्य हिंसा एवं भाव हिंसा है, इसलिये आत्मघात करना सबसे बड़ी हिंसा है। दूषित मनोभाव से दूसरों का घात करने पर यदि कष्ट प्राप्त करने वाले जीव में कलुषित परिणाम नहीं हुए तो उसकी केवल द्रव्य हिंसा अर्थात् शरीर को ही कष्ट मिलेगा, परन्तु कष्ट देने वाले की द्रव्य हिंसा के साथ-साथ भाव हिंसा भी होगी।

कष्ट पाने वाला स्वर्ग-मोक्ष भी जा सकता है किन्तु कष्ट देने वाला महापाप बंध करके नरकादि दुर्गति को प्राप्त होगा। इसलिये कष्ट सहन आत्मोन्नति के लिये अमृत तुल्य है और कष्ट देना विष तुल्य है। इस श्लोक में अहिंसा को अमृतमाता बताया है क्योंकि जैसे माता प्रेमभाव से संतान की रक्षा करती है उसकी प्रकार अहिंसा माता सम्पूर्ण जीव जगत् की रक्षा करती है। अमृतपान करने से जैसे जरा-मरण-व्याधि रूपी रोग जनित कष्ट नष्ट हो जाते है, उसी प्रकार अहिंसा से हिंसा, युद्ध, कलह, शिकार, परपीड़न आदि कष्ट नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक जीव जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है एवं सुरक्षित रहना चाहता है। कोई भी करने के लिये, कष्ट प्राप्त करने के लिये, असुरक्षित होने के लिए नहीं चाहता है। एक जीव को सम्पूर्ण लोक की विभूति देकर भी उससे प्राण चाहेंगे तो भी वह प्राण नहीं देगा। इससे सिद्ध होता है कि जीव का मूल्य तीन लोक की विभूति से भी अधिक है। जो एक जीव की रक्षा करता है वह मानव तीन लोक की विभूति का दान देता है। इसलिये भगवान् महावीर ने बताया कि सर्व धर्म का मूल आधार अहिंसा है। अहिंसा को दृढ़ करने के लिये, निर्मल करने के लिये एवं वृद्धि करने के लिये अन्य धर्म के प्रचारक भी कहते हैं-

" परवहा आद वहा होई"

पर वध आत्मा वध ही है। जो दूसरों को कष्ट देता है, वह स्वयं को ही कष्ट देता है।

जीव जिणवर जे मुणहि जिणवर जीव मुणहि।

ते समभावपरट्ठिया लहु निव्वाण लहहि।

जो प्रत्येक जीव को जिनेन्द्र भगवान् के समान मानता है एवं जिनेन्द्र भगवान् को जीव के बराबर मानता है वह समभाव को प्राप्त होकर शीघ्र ही

निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः सामान्य जीव एवं अरिहंत, सिद्ध भगवान् में कोई-भेद नहीं हैं क्योंकि''सव्वे सुद्धा हू सुद्धणया'' शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि से समस्त जीव सिद्ध सदृश्य है। इसलिये जो कोई भी जीव को कष्ट देता है वह साक्षात् परमात्मा को कष्ट देता है। जो जीवों की सेवा करता है,वह जिन भगवान् की सेवा करता है। इसलिये ईसा मसीह ने बताया था कि मानव-सेवा ही भगवान्-सेवा है।

मित्रास्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मैं मैत्री की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ।।(यजुर्वेद)
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।
अहिंसत्त्वं च भूतानाममृतत्त्वाय कल्पते।। (म.स्मृ.)

दुष्ट इन्द्रियों की दुष्प्रवृति के निरोध से, रागद्वेष के क्षय से और अहिंसा तत्त्व से जीवों को अमृत-तत्त्व की प्राप्ति होती है।

अहिंसापरमो धर्मस्तथाहिंसाऽहिंसा परमं फलम्।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः।। (महाभारत)

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परमं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं फलम्।
अहिंसापरमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्।।

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा परमा दया है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है। अहिंसा परम सुख है।

हिंसा के 4 भेद (1) आरंभी (2) उद्योगी (3) विरोधी (4) संकल्पी।

आरंभी हिंसा– गृहस्थ सम्बन्धी कार्य में जो हिंसा होती है, उसको आरंभी हिंसा कहते हैं।

विरोधी हिंसा– आत्मरक्षा के लिये, देश रक्षा के लिये, धर्म रक्षा के लिये, शरणागत की रक्षा करने के लिये, असहाय स्त्री एवं बालक की रक्षा के लिये, धर्मनीति के अनुसार, विरोधियों के साथ युद्ध करने से जो हिंसा होती है उसको विरोधी हिंसा कहते हैं।

संकल्पी हिंसा– दूषित भावना सहित दूसरे जीवों को मारने का भाव उत्पन्न होना, उसको संकल्पी हिंसा कहते हैं।

उद्योगी हिंसा– कृषि, वाणिज्य आदि कार्य में जो हिंसा होती है, उसे उद्योगी हिंसा कहते है।

एक आदर्श गृहस्थ नागरिक का हिंसा नहीं करने की भावना होने पर भी उसे आरंभ, व्यापारादि करना पड़ता है एवं देश आदि के लिये युद्ध भी करना पड़ता है। इसलिये वह उपरोक्त तीन हिंसा-आरंभी, उद्योगी, विरोधी हिंसा से बच नहीं सकता है परन्तु संकल्पी हिंसा त्याग करना उसके लिये नितान्त आवश्यक है।

सत्ता, धन-सम्पत्ति, ख्याति-कीर्ति या द्वेष आदि से जो दूसरे देश पर आक्रमण करता है वह संकल्पी हिंसा है। मांस के लिये मत्स्य-पालन करना, मुर्गी-पालन करना, बूचड़-खाना खोलकर जीवों का घात करना संकल्पी हिंसा है। रेशमी वस्त्रके लिये, रेशमी कीड़ों को जिन्दा उबालना संकल्पी हिंसा में ही गर्भित है।

अहिंसा यदि अमृत है जो हिंसा विष है। अहिंसा प्रकाश है तो हिंसा अन्धकार है। अहिंसा से ही अभिवृद्धि, प्रेम, विश्व-मैत्री, संगठन हो सकता है। केवल नारेबाजी, नेतागिरी, आक्रमण प्रवृत्ति से, अनीति अत्याचार से, शोषण नीति से शांति स्थापित नहीं हो सकती है। जैसे-मनुष्य को जिन्दा रहने का अधिकार है उसी प्रकार पशु आदि प्राणियों को भी है। महावीर भगवान् ने कहा था (Live And Let Live) (जीओ और जीने दो)। जीना जैसा तुम्हारा अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को जीने देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इसलिये प्रत्येक मानव एवं राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिये कि मांस के लिये या अन्य कोई स्वार्थ सिद्धि के लिये किसी भी प्रकार की हिंसा न करें।

स्वामी समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में कहा है-

" अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरम।"

अहिंसा में अहिंसा पालन करने वालों के लिये यह सम्पूर्ण जगत् परम ब्रह्ममय दिखाई देता है।

कौटिल्य चाणक्य ने बताया है-

''**त्यजेत् धर्म दया हीन**'' दयाहीन धर्म को त्याग करो। इसके साथ

उन्होंने बताया है कि जो दयाहीनं धर्म का त्याग नहीं करता है,उसको सुख-शांति वैभव-मोक्ष स्वर्ग आदि स्वयमेव ही छोड़कर चले जाते हैं।

लिंगायत धर्म के सर्वज्ञ कवि ने कहा है–

मैं अहिंसामय जैन धर्म को सिर पर धारण करता हूँ। जो हिंसामय ध ार्म है उसे चूल्हे में डाल कर जला दो।

हिंसा करने वाला परभव में अपघात से मरता है, नरक, तिर्यञ्च गति में जन्म लेता है। यदि कदाचित् मनुष्य जाति में जन्म लिया (गर्भ में आया) तो, वहाँ पर गर्भ में ही मरण को प्राप्त हो जाता है। जनम लिया तो अल्पायु में रोग या दुर्घटना या शस्त्र प्रहार से मरता है। यदि जिन्दा भी रहा तो रोग से, धनाभाव से महाहानि से, अंग-उपांग के छेदन-भेदन से अनेक शारीरिक मानसिक दुःखों को सहन करता है।

3. सत्य धर्म–

हित–मित–प्रिय वचः जीव हित साधकम्।
स सत्यं आगम वचः स्याद्वाद सहितम्।।

जो वचन हितकर है, सीमित है, प्रियकर है, जीव के लिये हितकारी है, आगम अनुकूल है और स्याद्वाद सहित हैं वे ही वचन सत्य हैं।

जो सत्य एवं मधुर वचन होते हुये भी यदि कुमार्ग में प्रवृत्त कराता है तो वह वस्तुतः सत्य वचन नहीं अपितु असत्य वचन है इसलिये वचन हितकर होना चाहिए। यथार्थ वचन भी अनर्गल प्रवृत्ति से, वाचाल स्वरूप से एवं अयोग्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि से बोलने पर वे वचन सत्य नहीं हैं क्योंकि वे वचन मित विशेषण से रहित हैं। सत्य वचन भी यदि प्रिय नहीं है, कर्ण मधुर नहीं है, मृदु नहीं है, और उस वचन से प्रियता, द्वेष, कटुता पैदा होती है तो वह वचन भी सत्य नहीं है। सर्वज्ञ प्रणीत आगम से विरोध वचन भी सत्य वचन नहीं है। इसलिये सत्यवादी को आगमानुकूल बोलना चाहिए। आगम के अनुकूल बोलते हुये भी हठग्राहिता से स्वार्थ या पंथसिद्धि के लिये अनेकान्त-स्याद्वाद को छोड़कर अपेक्षा को दुर्लक्ष्य करके जो बोलता है वह भी बड़ा असत्य है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियंब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्म-सनातनः ।। (मनुस्मृति)

सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, सत्य होते हुये भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिये। प्रिय असत्य वचन नहीं बोलना चाहिये यह सनातन धर्म है।

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है ताके हृदये आप।।

सत्य के बराबर तप नहीं है, झूठ के बराबर पाप नहीं है, जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में भगवान् है।

झूठी गवाही देना, कोर्ट में अन्याय पक्ष को लेकर वकालत करना, दूसरों को ठगने के लिये जाल-साजी वचन कहना आदि असत्य वचन है। जो असत्य बोलता है उसको वर्तमान भव में जिव्हा छेदन दण्ड मिलता है, परभव में जिव्हा में एवं मुख में विभिन्न रोग होते है। तथा उसका कोई विश्वास नहीं करता है और ऐसा असत्यभाषी परभव में मूक बनता है।

4. अचौर्य धर्म

कलुषित भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण नहीं करना अचौर्य धर्म है और यह अचौर्य धर्म सर्वतोन्नति के लिये साधन स्वरूप है।

क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-कामुक आदि भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण करना या आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्य को स्वीकार करना चोरी है। यदि अन्तरंग में विकार भाव नहीं है तो पर द्रव्यों का ग्रहण होने पर भी चोरी का दोष नहीं लगेगा। जैसे शून्यगृह, छोड़े हुए घर में मुनि रहते हैं, हाथ धोने के लिये प्रतिबंध रहित मिट्टी प्रयोग में लाते हैं, प्रासुक झरने का पानी प्रयोग करते हैं तो भी उनको चोरी का दोष नहीं लगता है क्योंकि उनके हृदय में चोरी करने रूपी भाव नहीं है। यदि अन्तरंग में कषाय भाव होने पर भी दूसरों की धन सम्पत्ति प्रतिकूल परिस्थिति के कारण चोरी नहीं कर पाया तो भी वह दोष का भागी ही है। जैसे एक चोर को रात्रि में सेंध खोदते समय कोत्त्वाल ने पकड़ लिया, वह चोरी नहीं कर पाया तो भी न्यायाधीश उसको दोषी साबित करके दण्ड देंगे।

केवल डाका डालकर, सेंध बनाकर चोरी करना ही चोरी नहीं

है परन्तु अधिक मुनाफा लेना, कम तोलकर देना, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, न्यायपूर्ण सेलटैक्स, इन्कमटैक्स नहीं देना, श्रमिकों (मजदूरों) को उपयुक्त वेतन नहीं देना, रिश्वत लेना, राष्ट्र के न्याय नीति के विरूद्ध व्यवसाय करना, चावल में कंकड़ मिलाकर बेचना, घी में डालडा मिलाना, डालडा में चर्बी मिलाना आदि चोरी रूप गर्हित पाप हैं।

धन-सम्पत्ति मनुष्यों का ग्यारहवाँ प्राण है, जो दूसरों की धन सम्पत्ति हड़प करता है, वह उसका प्राण हर लेता है। जो अन्याय से धन उपार्जन करता है, उसका धन अधिक दिन तक नहीं रहता है।

अन्याय उपार्जित धनं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते तु एकादशवर्षे समूलं च विनश्यति।।

अन्याय से उपार्जित धन अधिक से अधिक 10 वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाता है।

ह्वेनसांग भारत के विषय में लिखते हैं कि भारत एक समृद्धशाली देश होते हुए भी कोई घर में ताला नहीं लगाते थे। इससे सिद्ध होता है कि भारत में पहले विशेष चोरी नहीं होती थी। अभी भी कुछ वैदेशिक देश में चोरी कम होती है। परन्तु भारतीय लोग स्वयं को श्रेष्ठ एवं धार्मिक देश की प्रजा मानते हुये भी विचित्र चोरी करते हैं। व्यापारी क्षेत्र में काला बाजारी, मिश्रण (मिलावट) आदि चोरी के कार्य के साथ-साथ शैक्षणिक, शासकीय, न्यायालय आदि में भी चोरी की ही भरमार है। विद्याार्थियों को शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ाते हैं और विद्यार्थी ठीक से नहीं पढ़ते हैं यह कर्त्तव्यचोरी है। परीक्षा में नकल करना भी चोरी है, रिश्वत लेकर शिक्षा विभागीय अधि ाकारी एवं शिक्षक आदि के द्वारा विद्याार्थियों को उत्तीर्ण करना आदि चोरी है। न्यायालय में रिश्वत लेकर सही को झूठ करना एवं झूठ को सत्य करना बहुत बड़ी चोरी है, जिससे निर्दोष मारा जाता है, दोष बढ़ाता है, नैतिक पतन होता है एवं सत्य का हनन होता है। प्रायः करके न्यायालय अभी अन्यायालय है, न्यायाधीश अन्यायाधीश है। सत्य के नाम से असत्य का ही साम्राज्य चलता है। इसी प्रकार शासकीय नेता वर्ग, ऑफिसर आदि प्रायः रिश्वत लेकर ही काम करते हैं, परन्तु अपना पवित्र कर्त्तव्य

मानकर काम करने वाले बहुत कम हैं। पूँजीपति व्यापारी वर्ग भी मार्केट में वस्तुओं का शार्टेज उत्पन्न करके मनमाना मूल्य बढ़ाकर साधारण प्रजा का शोषण करते है जो रक्त शोषण, गला काटने से कुछ कम नहीं है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में हाहाकार मच जाती है एवं कुछ साधारण मनुष्य भी चोरी आदि कुकृत्य करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अतः देश, राष्ट्र की शान्ति के लिये उपरोक्त चौर्य कर्म त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है।

चोरी का फल-चोरी करने वालों को चोर कहकर पुकारते हैं, उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं, उसको अपने समीप में, घर में, ग्राम, नगरादि में नहीं रखना चाहते हैं, उसका कोई विश्वास नहीं करते हैं। उसको राजदण्ड मिलता है, देश से भी निकाल देते हैं। परभव में निर्धन भिखारी बनता है, कठोर परिश्रम करने पर भी पेट भरना दुर्लभ हो जाता है। दूसरे भव में उसकी धन सम्पत्ति भी अग्नि से, पानी से, भूकंप से, चोरी आदि से नष्ट हो जाती है।

5. ब्रह्मचर्य धर्म–

मन-वचन-काय से कृत-कारित-अनुमोदना रूप नवकोटि से कामुक प्रवृत्ति का त्याग करना ब्रह्मचर्य महागुण है।

काम चेतना, प्राणी मात्र में एक दुर्दमनीय विकार भाव है। काम प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षरण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है।जिससे मनुष्य में उत्साह, धैर्य, ज्ञान-विज्ञान, विवेक, संयम, आदि नष्ट हो जाते हैं। जीवन को ऊध र्वमुखी बनाने के लिये, स्वास्थ्य संपादन करने के लिये, आजीवन युवक रहने के लिये, बौद्धिक शक्ति का विकास करने के लिये नयी-नयी प्रज्ञा प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि के समान है।

केवल शारीरिक मैथुन त्याग से ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता है, उसके साथ-साथ मन से, काम वासना त्याग, वचन से काम कथा त्याग, तथा कृत, कारित, अनुमोदना से मैथुन त्याग करने से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। जो वीर्य प्रायः 42 दिन में तैयार होता है, वही वीर्य एक बार के भोग से क्षय हो जाता है। इससे आप लोग अनुमान कर सकते हैं कि अब्रह्मचर्य (मैथुन)

से कितनी क्षति होती है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिये पुनः 42 दिन चाहिये। ''बिन्दु पात हि मरणम्'' अर्थात् वीर्य स्खलन ही मरण है।

अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम-एक बार भोग के समय में संभोग क्रिया से लब्ध्यपर्याप्तक नवलक्ष (9 लाख) जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सरसों से भरे पात्र में एक तप्त लोहखण्ड डालने से सब सरसों जल जाते हैं उसी प्रकार नवलक्ष लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय मनुष्य जाति जीव भस्म हो जाते हैं, यह हुई द्रव्य हिंसा। द्रव्य हिंसा के साथ में जो मैथुन-भोग भोगने का मानसिक मलीन विचार है वह भाव हिंसा है। इस सारे पाप का फल इस भव में नहीं तो अगले भव में निश्चित भोगना पड़ेगा। इस पाप से अबह्मचारी छूट नहीं सकता है।

ब्रह्मचर्य का फल

आचार्य कुन्दकुन्द देव कते है कि ''त्रिलोक्य पूज्य भवति ब्रह्म'' तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से पालन करना सब के लिये संभव नहीं है, तथापि स्व स्त्री या स्वपति से ही संतोष रखना उसमें भी संयमित रूप से केवल योग्य संतान की उत्पत्ति के लिये भोग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

स्त्री को कम से कम 20 वर्ष तक एवं पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य में रहकर विद्या-अध्ययन करना चाहिये। उसके पश्चात् रज एवं वीर्य पक्व हो जाता है, जिससे योग्य, बलिष्ठ, तेजस्वी, धर्मात्मा, संतान उत्पन्न होती है। ऋतु स्नान में भोग करना सर्वथा त्यजनीय है। उससे ओज-वीर्य, आयु आदि घटती है। अनेक महारोग शरीर में प्रवेश करने लगते हैं। वह रोग वंश परम्परा से आगे चलकर अपने परिवार-संतान के ऊपर गलत प्रभाव डालता है। यदि संतान-परम्परा के ऊपर दया, करुणाभाव है तो इन दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से चौथे दिन से 16 दिन तक भोग का समय है। उसमें भी अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या एवं पर्व आदि दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। दिन में भोग करने से आयु क्षीण हो जाती है। अतः दिन में भोग वर्जनीय है। ग्रीष्म ऋतु में भी विशेष भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से लेकर 16 दिनों में किया हुआ स्त्री संबंध ही गर्भ धारण करने का कारण

हो सकता है। अतः सोलह दिन से आगे ऋतु स्नान तक स्त्री संबंध आयुर्वेद में वर्जनीय है। इस प्रकार संयमित जीवन-यापन करने पर कम एवं योग्य संतान होगी, जो कि सर्वगुण सम्पन्न तथा निरोगी होगी। वर्तमान में संयमित जीवन के अभाव में ही तेजहीन (शरीर कांति) वीर्य हीन, अवांछित अधिक सन्तान उत्पत्ति होती है। जिससे स्वयं माता-पिता एवं सरकार भी चिंतित है। उसका निरोध करने के लिये अनैतिक साधन के माध्यम से गर्भ निरोध संस्कार कर रही है। इससे शील को ही तिलांजलि दे दी है। कोई किसी से भोग करने पर भी गर्भ नहीं रहने के कारण पता नहीं चलता है, जिससे अनैतिकता, कुशीलता, पापाचार बढ़ रहा है। इसलिय सुखमय जीवन यापन करने के लिये ब्रह्मचर्य अणुव्रत पालन करना सबके लिये परम कर्त्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य अणुव्रत भारत की एक प्राकृतिक, वैज्ञानिक, जन्म निरोध प्रणाली है। इसको अपनाने से जन्म निरोध अर्थात कुटुम्ब नियोजन प्रणाली तथा अर्थ व्यय सब रूक जायेगा।

जो पर स्त्री गमन करता है या जो स्त्री से अधिक लम्पटता से भोग करता है वह पर भव में नपुंसक बनेगा। पुरुष बना तो लिंग में अनेक रोग उत्पन्न होंगे। परभव में तेजहीन, वीर्यहीन दुर्बल शरीर मिलेगा। अभी भी अनेक लोग T.B. के रोग से ग्रस्त दिखते हैं, और अनेक चर्म रोग, ब्लड दूषित होने से रोगी दिखते हैं। ये प्रायः अधिक भोग करने से ही हुये हैं। अतः ऐसी दुःखदायी अवस्था से बचना हो तो ब्रह्मचर्य की एकमात्र श्रेयस्कर है।

6. अपरिग्रह धर्म-

अन्तरंग चौदह प्रकार का परिग्रह एवं बहिरंग 10 प्रकार के परिग्रह त्याग को अपरिग्रह धर्म कहते हैं। यह अपरिग्रह महाव्रत सर्व सुखदायक है।

अन्तरंग 14 प्रकार का परिग्रह-(1)मिथ्यात्व (2) क्रोध (3) मान (4) माया (5) लोभ (6) हास्य (7) रति (8)अरति (9) शोक (10) भय (11) जुगुप्सा (12)स्त्री वेद (Female Sex) (13)पुरुष वेद (14) नपुंसक वेद।

बहिरंग 10 प्रकार का परिग्रह–(1)क्षेत्र (खेत-जमीन) (2) वास्तु (मकान) (3) हिरण्य (चांदी) (4) स्वर्ण (सोना) (5) धन (पशु सम्पत्ति) (6) धान्य (अनाज आदि) (7) दासी (नौकरानी) (8) दास (9) कुप्य (वस्त्र) (10) भाण्ड (बर्तन)।

परिग्रह का भयंकर परिणाम : जिस प्रकार ग्राह (मगरमच्छ या घड़ियाल) मनुष्य को पकड़कर जल में डुबा देता है एवं खा लेता है, उसी प्रकार उपरोक्त 24 प्रकार के परिग्रह जीव को पकड़कर संसार में डुबाकर जन्म-मरणादि दु:ख को देते है। सम्पूर्ण 343 घन राजू प्रमाण विश्व में स्थित परिग्रह के भेद केवल 10 है, परन्तु आश्चर्य की बात है कि साढ़े तीन हाथ प्रमाण इस क्षुद्र शरीर में 14 परिग्रह है। व्यवहार में एक दुष्ट ग्रह के कारण मनुष्य को बहुत ही कष्ट मिलता है। तब जिनके पीछे महादुष्ट 24 परिग्रह लगे हैं, उनको कितना कष्ट मिलेगा? विचार करना चाहिये। एक ग्राह (घड़ियाल) यदि मनुष्य को पकड़कर निगल सकता है तो क्या 24 प्रकार के परिग्रह जीवन को पकड़कर नहीं निगल सकते हैं? अर्थात निश्चय रूप से निगल ही जायेंगे।

मूर्च्छा परिग्रह– बाह्य वस्तु के प्रति जो मूर्च्छा अर्थात् ममत्त्व परिणाम है, वही मुख्य अन्तरंग परिग्रह है। मूर्च्छा, ममत्त्व, धन की इच्छा होने के कारण गरीब भी परिग्रहधारी है। तीर्थकर केवली के समवशरण आदि बाह्य वैभव विश्व की सबसे अधिक विभूति होते हुये भी वे परिग्रह धारी नहीं हैं,क्योंकि वे मूर्च्छा, ममत्व, इच्छा से रहित हैं। इच्छा एक प्रकार की अलौकिक अग्नि है, क्योंकि अग्नि को ईन्धन मिलने पर ही बढ़ती है, ईन्धान के अभाव में अग्नि बुझ जाती है परन्तु इच्छा रूपी अग्नि वैभव के अभाव को प्राप्त करने के लिये प्रज्ज्वलित होती है एवं मिलने पर और भी अधिक रूप से प्रखर रूप से प्रज्ज्वलित होती है।

बढ़त–बढ़त सम्पत्ति सलिल मन सरोज बढ़ जाय।
घटत–घटत फिर न घटे, घटे तो फिर गिर जाय।।

सम्पत्ति रूपी पानी जितना-जितना बढ़ता जाता है उतना-उतना मन रूपी कमल बढ़ता ही जाता है, परन्तु बढ़ जाने के बाद यदि पानी घट जावे तो उस अनुपात से कमल का नाल कम नहीं होता है, जिसके कारण

आधार के अभाव से नाल गिर जाता है। उसी प्रकार मन (इच्छा) जितनी धन सम्पत्ति बढ़ती है, उससे भी अधिक प्राप्त करने के लिये लालायित हो जाता है, किन्तु धन कम होने पर इच्छा कम नहीं होती है, जिससे मनुष्य की इच्छा भंग हो जाती है, जिससे मनुष्य को अकथनीय मानसिक वेदना होती है।

इच्छा अग्नि है, वैभव घी है। इच्छा रूपी अग्नि को शान्त करने के लिये यदि वैभव रूपी घी डालेंगे तो इच्छा रूपी अग्नि शान्त नहीं होगी बल्कि अधिक अधिक बढ़ती ही जायेगी। इसलिये इच्छा रूपी अग्नि शान्त करने के लिये बाह्य परिग्रह, धन-सम्पत्ति जितना-जितना कम करेंगे उतनी-उतनी इच्छा रूपी अग्नि कम होकर मानसिक शान्ति मिलेगी।

कनक-कनक त सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाय बौराय नर, वे पाय बौराय।।

कनक-धतूरा (विषाक्त फल) से कनक-सुवर्ण (धन सम्पत्ति) मादकता से सौ गुनी अधिक है, क्योंकि धतूरा फल खाने पर ही नशा चढ़ता है परन्तु कनक अर्थात धन को प्राप्त करते ही नशा चढ़ जाता है अर्थात मनुष्य अधिक धन का इच्छुक, गर्वी एवं व्यसनी बन जाता है।

दूरर्ज्येनासुरक्षेण नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थ मन्यौ जनः कोघपि ज्वरवानिव सर्पिषा।।

(इष्टोपदेश : श्लोक 13)

धन सम्पत्ति सम्पत्ति अर्जन करना अत्यन्त कष्ट साध्य है। धनार्जन के लिये मनुष्य भयंकर जंगल में जाता है, अथाह समुद्र में डूबता है, अपार सागर को पार करके प्रिय कुटुम्ब को छोड़कर अपरिचित देशान्तर को जाता है। मालिक के सामने नाचता है, गाता है, चापलूसी करता है, दीनहीन के सदृश्य मालिक की सेवा करता है। धन सम्पत्ति के लिये चोरी, डकैती, काला बाजार (दो नम्बर का काम), शोषण आदि भी करता है जिससे महापाप का बंध होता है। धन उपार्जन के बाद भी शान्ति नहीं मिलती है। सुरक्षा के लिये दिन-रात चिन्ता करता है, धन-सम्पत्ति को छिपाता है, ताले के ऊपर ताले लगाकर रखता है, असुरक्षा के भय के कारण भयभीत रहता है, कोई अपहरण करने से उसके विरोध में लड़ाई

भी करता है, विविध प्रकार की सुरक्षा करने पर भी पुण्य के अभाव में धन नहीं रहता है। इस प्रकार आय में दुःख, व्यय में दुःख, रक्षा में दुःख। इस प्रकार आदि-मध्य-अन्त में दुःख स्वरूप धन प्राप्त कर सुख मानता है, जैसे ज्वर ग्रसित रोगी घी पीकर सुख मानता है। ज्वर से ग्रसित रोगी के घी पीने पर उसका रोग बढ़ेगा ही घटेगा नहीं। उसी प्रकार धन से संताप बढ़ेगा ही घटेगा नहीं।

आर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोघ्प्यवितृप्तिः।
कष्टं सर्वेघपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी।। (65)

(आत्मानुशासन)

धन इच्छुक धन नहीं प्राप्त कर एवं धनी अतृप्ति के कारण दुःखी रहते हैं, परन्तु जिसने समस्त आशा को अपना दास बना दिया है, उस प्रकार के महामुनि ही सुखी है।

आशा दासी कृतयेन तेन दासीकृतं जगत्।
आशायाश्च भवेत् दास सः दास सर्व देहीनाम्।।

जिसने आशा को अपना दास बना दिया, उसने सर्व जगत् को दास बना दिया। जो आशा का दास बन गया वह सब जगत् का दास बन गया।

आशा गर्तः प्रति प्राणी यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता।। (आत्मानुशासन)

एक-एक जीव का आशा रूपी गड्ढा इतना विशाल है कि उसमें यदि इस सम्पूर्ण विश्व को डाला जाये तो भी विश्व उस गड्ढे में एक अणु के समान दृष्टि गोचर होगा। यदि एक ही जीव की आशा के लिये यह सम्पूर्ण विश्व भी अत्यन्त कम है तब विश्व में स्थित अनंतानंत जीवों के लिए कितना भागांश मिलेगा। इसलिये विषय-इच्छा करना नितान्त भूल है। यह आशा रूपी गर्त (गड्ढा) अत्यन्त विचित्र है, क्योंकि एक बार गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालते जायेंगे वह गर्त उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा किन्तु आशा रूपी गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालेंगे उतना-उतना आशा का गड्ढा बढ़ता ही जायेगा किन्तु कम नहीं होगा अर्थात भरेगा नहीं बढ़ता ही जायेगा और जितना-जितना कम करते जायेंगे उतना-उतना पूर्ण होता

जायेगा और पूर्ण आशा को निकाल देने से गड्ढा पूर्णरूप से भर जायेगा। यही इस गड्ढे की विचित्रता है। इसलिये आशा की पूर्ति आशा त्याग से होती है आशा करने से नहीं होती है।

7. दिगम्बर जैन साधु के नग्नत्व का कारण

उपरोक्त दोष-गुण का विचार करके प्रबुद्ध, विवेकी, सुख शांति इच्छुक जीव अन्तरंग एवं बहिरंग परिग्रह को त्याग करते हैं। वे अपने शरीर को भी पर-द्रव्य मानते है। उस शरीर को भी त्याग करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, इसलिये बाह्य परिग्रह के साथ-साथ विकार को छिपाने योग्य श्रृंगार के उपकरण-वस्तुयें, शरीर की सुरक्षाभूत सम्पूर्ण वस्त्रों का त्याग करके बालकवत् सरल-सहज, अन्तरंग, बहिरंग ग्रंथि से रहित यथाजातरूप निर्ग्रन्थ (नग्न) रूप को धारण करके आत्मोन्नति के लिये तत्पर हो जाते हैं। नग्नत्व व्यावहारिक अपरिग्रहवाद का ज्वलन्त आदर्श उदाहरण है।

समाजवादी नेता केवल भाषण करते हैं किन्तु पूर्ण रूप से अपरिग्रहवाद को जीवन में उतारते नहीं हैं परन्तु दिगम्बर साधु केवल भाषण ही नहीं करते हैं किन्तु आचरण में भी विश्व के सामने अनुकरणीय-परमोत्कर्ष आदर्श स्थापित करते हैं। इस आदर्श का अनुकरण करके साम्यवादी, अपरिग्रहवादी, मनुष्य को भी यथाशक्ति उस आदर्श को जीवन में उतारना चाहिये।

वर्तमान आधुनिक दुनियाँ में अपरिग्रहवाद के महत्त्व से सभी अवगत हैं एवं उसके आदर्श पर सब को स्वाभिमान भी है। कार्लमार्क्स, लेनिन आदि सामाजिक नेताओं ने अपरिग्रहवाद के महत्व का अनुभव करके उसका स्थापन-प्रचार-प्रसार किया है। परन्तु जैनधर्म का साम्यवाद, अंतःकरण पूर्व सरल-सहज स्व-प्रवृत्ति से होता है। यदि देश, राष्ट्र, समाज को सह-अस्तित्व, विश्व मैत्री, समता भाव चाहिये एवं विषमता की खाई को कम करना है, तो अपरिग्रवाद को शीघ्रताशीघ्र स्वेच्छापूर्वक पालन करना चाहिये।

ईसा मसीह ने अपने उपदेश में प्रतिपादित किया था कि एक सुई के छेद से कदाचित् (अनहोनी जैसी होनी) हाथी निकल सकता है परन्तु

परिग्रह धारी मनुष्य ईश्वरीय राज्य के विशाल दरवाजे में प्रवेश नहीं कर सकता है। अर्थात परिग्रह स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति के लिये, सुख शांति के लिये प्रतिबंधक स्वरूप है।

वर्तमान देश-विदेश में साम्यवाद का गुणगान होते हुये भी उसको आचरण में नहीं अपनाने के कारण विषमता फैल रही है। दुनिया में खाद्य सामग्री एवं जीवनोपयोगी सामग्रियों का अभाव नहीं होने पर भी अपरिग्रह रूपी बाड़ (तट) के अभाव में समीचीन वितरण नहीं होता है इसके कारण ही आज देश में, समाज में कोई करोड़पति है तो कोई रोटी का भी दुर्भागा है, कंगाल है। एक स्वादिष्ट-गरिष्ट भोजन करते-करते मरण को प्राप्त होता है तो एक भोजन के नहीं होने से भूखा ही मरण को प्राप्त होता है। एक अतुल वैभव की चिन्ता से दुःखी है, तो एक धन नहीं होने से दुःखी है। क्या इसमें हमारे समाज के पूंजीपति कारण नहीं हो सकते हैं?

यदि दिगम्बर जैन साधु के सदृश्य पूर्ण रूप से परिग्रह त्याग करना संभव नहीं है तो नितान्त आवश्यक जीवनोपयोगी सामग्री, रखकर अन्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिये, उसको अपरिग्रह अणुव्रत कहते हैं। अपरिग्रह अणुव्रत प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिये परमावश्यक है।

वेद व्यास के ब्रह्मज्ञानी पुत्र शुकदेव जी जब संसार से विरक्त होकर ब्रह्म की उपलब्धि के लिये जंगल की ओर प्रयाण करने लगे तब उनके पिता वेदव्यास जी उन्हें समझाकर वापस लाने के लिये उनके पीछे-पीछे जाने लगे। रास्ते में एक जलाशय में कुछ सुन्दर स्त्रियाँ नग्न होकर स्नान कर रही थीं। जब शुकदेव उस रास्ते से गुजरे तब वे स्त्रियाँ पूर्ववत् स्नान ही करती रही, परन्तु जब व्यासदेव उस रास्ते से गुजरने लगे तब सब स्त्रियाँ लज्जा से कपड़ा पहनने लगीं। इस सब दृश्य को देखकर व्यासदेव के मन में उथल-पुथल होने लगी। वे उन स्त्रियों से पूछने लगे कि मेरा सुन्दर नग्न युवक पुत्र यहाँ से जब गुजरा तब आप पूर्ववत् ही स्नान कर रही थीं और मैं एक, वस्त्रधारी वृद्ध जब इस स्थान से गुजरने लगा तब आप सब लज्जा से कपड़े पहनने लगीं? तब स्त्रियाँ उत्तर देती हैं कि भले ही आप वस्त्रधारी हो या वृद्ध हो तो भी आपका मन विकार युक्त युवक है और आपका पुत्र शुकदेव भले शरीर से नग्न, सुन्दर नवयुवक होते हुए भी

मन से वैराग्य युक्त वृद्ध है। इसीलिये आपको देखकर मन में विकार हुआ परन्तु शुकदेव को देखकर मन में विकार उत्पन्न नहीं हुआ वरन् श्रद्धा उत्पन्न हुई। इसलिये हम लोग उसको देखकर कपड़े नहीं पहने और आपको देखकर कपड़े पहनने लगे।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-1)

1. आत्मधर्म किसे कहते हैं?
2. पाँच धर्म के नाम बताईए?
3. अहिंसादि धर्म को आत्म धर्म क्यों कहा?
4. महाव्रत किसे कहते हैं? व कितने प्रकार के हैं?
5. अणुव्रत किसे कहते हैं?
6. महाव्रत तथा अणुव्रत के धारी कौन होते हैं?
7. अहिंसा धर्म का स्वरूप बताओ?
8. हिंसा कितने प्रकार की होती है?
9. द्रव्य हिंसा बड़ी है या भाव हिंसा?
10. हिंसा पाप से क्या हानि है?
11. अहिंसा धर्म से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक लाभ बताईये?
12. चार प्रकार की हिंसा के नाम व स्वरूप बताईये?
13. इन 4 हिंसा में से निकृष्ट हिंसा कौन सी एवं क्यों है?
14. अहिंसा सम्बन्धी इस परिच्छेद के कुछ श्लोक सुनाओ?

'वसुधैव कुटुम्बकम्' प्रत्येक जीव में परम ब्रह्म का दर्शन करने वाले, जीव में जिनेन्द्र को मानने वाले, जब गुरु-शिष्य, साधर्मी-साधर्मी, पिता-पुत्र, भाई-भाई लड़ते हैं-दूसरों को नीचा दिखाते हैं, दूसरों को क्षति पहुँचाते हैं, फूट डालते है तब मेरी विवशता और चिंता बढ़ जाती है।

-आ. श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

द्वितीय परिच्छेद
सप्त व्यसनों का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण

सप्त व्यसन से रहित, अष्ट मूलगुणों से सहित, षट्कर्त्तव्य में सदा रत रहने वाला श्रावक, मुनि अवस्था के लिये साधक स्वरूप है।

सप्त व्यसन के नाम-

मद्य मांस द्यूतं वेश्या पारर्द्धिः चौर्वः परनारीम्।
दुर्गति निमित्त भूतानि, पापस्य कारणानि।।

(1) मद्य सेवन (2) मांस भक्षण (3) जुआ खेलना (4) वेश्या गमन (5) शिकार खेलना (6) चोरी करना (7) परनारी सेवन करना ये सप्त व्यसन दुर्गति के लिये निमित्त भूत हैं। पापों के लिये कारण स्वरूप है। व्यसन का अर्थ दुःख है, जो दुःख को देने वाले कार्य है उन्हें व्यसन कहते हैं। इस प्रकार दुःखों को देने वाले कारण अनेक होते हुए भी सामान्य दृष्टि से उनको सात विभागों में विभाजित किया गया है। व्यसन का दूसरा अर्थ है बुरी आदत, जिससे मनुष्य को किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर, परावलंबी होकर, हिताहित विवेक खोकर, पुण्य-पाप को बिना माने अहितकर काम सतत करने पड़ते हैं, उसको व्यसन कहते हैं। ये सप्त व्यसन, सप्त नरक के लिये द्वार स्वरूप हैं।इससे आर्थिक, नैतिक, शारीरिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, इहलोक एवं परलोक की क्षति होती है। विवेकी, प्रबुद्ध,सुख-इच्छुक जीव विशेष भयंकर अग्नि से भी अत्यन्त विध्वंसकारी जानकर सम्पूर्ण व्यसनों का पूर्ण रूप से त्याग करें।

(1) मद्य व्यसन-

मद्य पान करने से मन मोहित हो जाता है, धर्म को भूल जाता है तथा सदाचरण को भी विस्मरण कर देता है, उससे पापास्रव होता है। मद्य में स्थित असंख्य सूक्ष्म जीव के वध से पाप बंध होता है।

चावल, महुआ, गुड़ आदि को घड़े में भरकर उसको जमीन में गाढ़ देते हैं। अनेक दिनों में चावलादि सड़ने पर उसमें अनेक लट आदि त्रस

जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः उसको उबाल करके मद्य निकालते हैं-इसलिये मद्य त्रस जीवों का रस ही है। मद्य के वर्ण के सदृश्य असंख्यात सूक्ष्म जीव प्रत्येक मद्य में रहते हैं। मद्यपायी के मद्य-पान से उसके ज्ञान तन्तु शिथिल हो जाते हैं, जिससे मन मोहित होकर स्मरण शक्ति को, विवेक शक्ति को खो डालता है, जिससे वह सदाचार को भूल जाता है, पागलों के समान कुछ न कुछ बकता रहता है, माँ, बहिन, स्त्री में किसी प्रकार का भेद नहीं देखता है, अनैतिकतापूर्ण आचरण भी कर लेता है तथा दूसरों को अपशब्द भी कहता है, मारपीट भी करता है, अपना कर्त्तव्य सुचारू रूप से पालन नहीं कर पाता है। इससे पापास्रव होता है। मद्य में स्थित जीवों के घात से भी पापास्रव होता है। शरीर, मन, ज्ञान-तंतु, स्नायु, पाचनशक्ति मद्य से क्षीण होने के कारण शरीर में अनेक रोग एवं अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे वह क्षीण शक्ति होकर विशेष कोई कार्य नहीं कर पाता है, अर्थाभाव से बाल-बच्चे अशिक्षित रहते हैं एवं खाद्य अभाव से योग्य पोषण भी नहीं हो पाता है, इससे संतान को भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है। मद्यपान से अर्थ (धन) भी व्यर्थ में ही खर्च होता है। अज्ञानी मनुष्य अर्थ को देकर मद्य पीकर अनेकों अनर्थों को निमन्त्रण देता है। एक पशु भी जान बूझकर अनर्थ अर्थात् विपत्तियों को निमन्त्रण नहीं देता है, इस दृष्टि से वह पशु से भी पशु है।

केवल मद्यपान इस व्यसन में गर्भित नहीं है, इसके साथ-साथ विदेशी ब्रांडी, व्हिस्की, रम, ताड़ी, गांजा, भांग, चाय, काफी, चरस, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गुटखा, पान-पराग आदि-आदि मद्य व्यसन के अन्तर्गत होते हैं। उपरोक्त नशीले पदार्थो में अनेक विषाक्त रसायन पदार्थ रहते हैं, जिससे टी.बी., कैंसर, रक्तचाप, दमा, खाँसी, कब्जियत, बदहजमी, सिर-दर्द, अलसर आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बीड़ी-सिगरेट-जर्दा-तम्बाकू में निकोटिन विष होता है। चाय में कैफीन विष रहता है, मद्य में एल्कोहल विष रहता है। वे विष शरीर को बहुत क्षति पहुँचाते हैं और उनसे केंसर आदि रोग उत्पन्न होता है।

महात्मा गांधी स्वतंत्रता के पहले बोलते थे एवं उनकी तीव्र भावना

थी कि भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् मुझे सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ कुछ करना है तो वह है भारत से पूर्णरूप से मद्य-निषेध करना। महात्मा गांधी यहाँ तक कहते थे कि (Tea is white poison) चाय सफेद विष है। यदि चाय को सफेद विष मानते थे, तो क्या मद्यादि, साक्षात् विष है-ऐसा नहीं कहते होंगे? इससे आप सहज ही समझ सकते हैं। परन्तु अत्यन्त शर्म की बात है कि वर्तमान की स्वतंत्र सरकार स्वछन्द होकर स्वयं मद्य फैक्ट्री खोलकर, मद्य दुकान प्रत्येक गाँव में खोलकर भारत की जनता को विष पिलाने में दिन रात कार्यरत है।

सरकार सोचती है कि इससे कुछ आर्थिक लाभ देश को होता है, परन्तु मूढ़ सरकार नहीं जानती है कि वह अर्थ किसका है और उस मद्य से जो शारीरिक-मानसिक क्षति होती है उस क्षति को पूर्ण करने के लिये सरकार को एवं जनता को कितना अर्थ व्यय करना पड़ता है। इससे उस लाभ की अपेक्षा व्यय कितना अधिक है। स्वास्थ्य के लिये सरकार अस्पताल खोलती है एवं रोगी बनाने के लिये जनता को मद्य पिलाती है। इसलिये भारत की स्वतंत्र सरकार को तथा प्रादेशिक शासकों को, मद्य के प्रचारकों को, कुछ पूँजीपतियों को मद्य का दुष्परिणाम जानकर उसका सम्पूर्ण शासकीय क्षेत्र में कानून लगाकर निषेध करना चाहिये तथा प्रजा को स्वयं प्रवृत्त होकर स्व इच्छा से मद्य तथा अन्य-अन्य नशीली वस्तुयें सर्वथा त्याग कर देनी चाहिये।

(2) मांस-व्यसन-

मांस वृक्ष में नहीं लगता है, मांस के लिये त्रसकायिक बड़े जीवों का घात करना पड़ता है। उस मांस में कच्ची अवस्था में, पक्व अवस्था में एवं पकती हुई अवस्था में उस जाति के कोट्यावधि जीव रहते हैं। मांस-भक्षण से द्रव्य हिंसा एवं भाव-हिंसा सदा होती है। मांस भक्षी जीव द्रव्यतः भावतः तथा तात्कालिक एवं भावी नारकी है। वे सर्वत्र अनन्त दुःख को प्राप्त करते हैं।

मांसाहार से हानि-

शाकाहारी के लिये जैसे-धान्य-फलादि वनस्पति से सरलता से प्राप्त

होती है, उसी प्रकार मांस किसी भी वनस्पति से नहीं मिलता है। मांस के लिये, बकरा, गाय, भैंस, मुर्गा, मछली आदि बड़े-बड़े जीवों को निर्दय भाव से कत्ल करना पड़ता है। कत्ल के बाद भी वह मांस जीव से रहित नहीं है। किन्तु मांस के प्रत्येक कण में जिस जीव का मांस है, उस जीव जाति के सूक्ष्म निगोदिया जीव संख्यातकोटि प्रमाण प्रत्येक समय में रहते हैं। जैसे उदाहरण रूप में गाय का मांस है, तो उस मांस में गौ-जातीय पंचेन्द्रिय सूक्ष्म निगोदिया जीव होते हैं, वे मांस को पकाते समय में रहते हैं, पक्व होने के बाद अर्थात् पकाने के बाद भी रहते हैं, मांस को छूने मात्र से अनेक जीव मर जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समय में असंख्यात जीवों का घात होता रहता है। यह हुई द्रव्य हिंसा। बिना क्रूर, निर्दय परिणाम से मांस के लिये किसी भी जीव का घात नहीं हो सकता है और भावों में जो कठोरता (निर्दय भाव) है वही महान् भाव हिंसा है। इसलिये मांस भक्षण से द्रव्य-हिंसा एवं भाव-हिंसा होती है।

कोई जीव विचार करें कि स्वयं मरे हुए जीव के मांस के खाने में कोई दोष नहीं है किन्तु उपरोक्त वर्णित तज्जातीय जीवों का सद्भाव होने से एवं उन जीवों का घात होने से निश्चित रूप से दोष लगता ही है।

कोई कहेगा-बना हुआ मांस खरीदकर खाने पर किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगेगा परन्तु मांस में भी असंख्यात जीव रहते हैं, जिस मांस को बाजार से खरीद कर लाये हैं और उन जीवों की हिंसा होने से दोष निश्चित रूप से लगता ही है। इस प्रकार जो वधिक मनुष्य, जीव वध करता है, वह तो हिंसा का भागी है, जो मांस परोसता है, वह भी दोष का भागी है, जो मांस खाता है, वह भी दोष का भागी है।

अण्डा शाकाहार नहीं-

कोई-कोई जिव्हा-लोलुपी, कुतर्की, मूढ़ पुरुष मानते हैं कि आजकल का कृत्रिम अण्डा (हायब्रेड अण्डा) जिसमें से जीव उत्पन्न नहीं होता है, वह अण्डा मांस नहीं है, शाकाहार है। परन्तु ऐसे अज्ञानी नहीं जाते हैं कि वह अण्डा रज और वीर्य के संयोग से बना है। मुर्गी के

गर्भ में बढ़ा, गर्भ से अण्डा निकलने के बाद भी कुछ समय तक वृद्धि को प्राप्त होता है, यदि जीव नहीं होता तो वह अण्डा बढ़ता कैसे? बढ़ने के कारण अर्थात् वृद्धि होने के कारण उसमें जीव निश्चित है, परन्तु उसमें इतनी जीवनशक्ति नहीं है कि उसमें मुर्गी का बच्चा उत्पन्न हो सके। जैसे कुछ वृक्ष की शाखा को कलमी करने से नवीन वृक्ष होते है और कुछ वृक्ष से उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु दोनों प्रकार की शाखा, वृक्ष से संयुक्त है, दोनों शाखायें बढ़ती है, दोनों पत्ते, पुष्प, फल धारण करती है। कदाचित् आपके मतानुसार इस अण्डा में पक्षी का जीव नहीं है तो भी उस मांस में तज्जातीय जीव करोड़ों की संख्या में रहते हैं। अण्डा भक्षण से उन जीवों का घात होता ही है।

प्रत्येक मांस में क्लोरीन आदि अनेक विषाक्त तत्त्व रहते हैं। जिससे कैंसर, टी.बी. रक्तचाप आदि रोग होते हैं।

प्राकृतिक रूप से मनुष्य शाकाहारी है–

मनुष्य शरीर के अवयव यथा दाँत, जिव्हा, आँत, नाखून आदि शाकाहारी प्राणी के समान हैं। मांसाहारी प्राणियों में जो शरीर के अवयव होते हैं, वे अवयव शाकाहारी प्राणियों से अलग प्रकार के होते हैं। मांसाहारी प्राणियों के नाखून-तीक्ष्ण, लम्बे एवं शक्तिशाली होते हैं, जिससे वे शिकारी प्राणी को पकड़कर चीर-फाड़ कर सकें, किन्तु मनुष्य का नाखून उस प्रकार का नहीं है। मांसाहारी पशुओं के दाँत अत्यन्त तीक्ष्ण नोंकदार रहते हैं, जिससे वे शिकार को फाड़कर खा सकें, परन्तु मनुष्य के दाँत शाकाहारी गाय-भैंस के समान चपटे हैं। मांसाहारी प्राणी पानी को जीभ से चाट चाटकर पीते हैं। परन्तु मनुष्य शाकाहारी प्राणियों के समान मुख में पानी भरकर पीता है। माँसाहारी प्राणियों की जिव्हा अत्यन्त रूखी, करकसी एवं काँटेदार रहती है जिससे हड्डी माँस चाटकर खा जाता है शाकाहारी प्राणियों की जिव्हा चिकनी एवं कोमल रहती है। माँसाहारी प्राणियों की आँते छोटी रहती है, किन्तु मनुष्य की आँते शाकाहारी प्राणियों की आँतों के समान लम्बी रहती है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति से भी मनुष्य शाकाहारी प्राणी है।

शाकाहारी भोजन करने से अर्थ व्यय कम होता है एवं मांसाहार में अर्थव्यय अधिक होता है। एक गाय से तो जीवन भर हजारों लीटर दूध प्राप्त कर सकते हैं उससे दही, मट्ठा, घी आदि उत्तमोत्तम अमृत समान प्राणदायक आहार प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु गाय को मार करके मांस का प्रयोग मात्र एक-दो दिन के लिए ही कर सकते हैं। जिस गाय से जीवन भर अनेक सन्तानें, हजारों लीटर दूध, अनेक टन प्राकृतिक खाद उत्पन्न हो सकते हैं, उस गाय को मारकर उससे अपना पेट भरना कितनी कृतघ्नता है?

प्रकृति में एक प्रकार सन्तुलन रहता है। सन्तुलन के अभाव में एक विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे अनेक प्राकृतिक विप्लव होते हैं, जैसे अनावृष्टि,दूषित वायु मण्डल (वायु प्रदूषण) तथा अनेक रोगों की उत्पत्ति आदि। उदाहरण स्वरूप कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने खेत के लिये एवं औद्योगिक कार्य के लिये वन-सम्पत्ति को काट डाला व वनस्पतियों की कमी से ऑक्सीजन (प्राण वायु) का अभाव (कमी) हुआ। उष्णता बढ़ी जिससे वर्षा होना कम हो गया। वातावरण दूषित हो गया रोग की वृद्धि हुई, वनस्पति सम्पत्ति का ह्रास हुआ। वन्य पशुओं का अभाव होने लगा। इन सब उपरोक्त दुर्घटना को सरकार ने अनुभव करके पुनः वृक्षारोपण प्रारम्भ किया। यदि केवल निम्न श्रेणियों के जीवों के घात से इतना विप्लव हो सकता है, तो क्या अभी जो सरकार पंचेन्द्रिय जीव गाय, बकरा, सूअर, मुर्गा, मछली आदि का निर्मम भाव से अरबों की संख्या में घात कर रही है, उससे क्या सफलता मिल सकती है अर्थात् तीन काल में भी नहीं मिल सकती है।

मांस के रोग

मांस में Cholesterol (कोलेस्टरोल)विष रहता है। इससे Blood Pressure (रक्तचाप) बढ़ता है एवं साँस फूलने लगता है, इसमें निहित C.27.H.46.0 तत्त्व है। मांस से कैंसर आदि भयंकर रोग होते हैं।

जलाशय से मछली, मेंढ़क आदि को मारने से पानी दूषित एवं कीड़ों से भर जाता है, क्योंकि मछली आदि दूषित अंश को खाकर पानी

को स्वच्छ रखते हैं। अस्वच्छ पानी के सेवन से रोग होते हैं। पक्षियों को मारने से विषाक्त कीड़ों की संख्या बढ़ती है। सिद्धान्ततः सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का शरीर है। वनस्पति, पशु-पक्षी, मनुष्य, जलवायु आदि प्रकृति के शरीर के अवयव स्वरूप है। जैसे-एक मनुष्य के एक हाथ को कष्ट देंगे तो दूसरा हाथ नहीं सोचेगा कि मुझे तो कष्ट नहीं दे रहा है तो मैं क्यों विरोध करूँ? परन्तु शरीर एक होने से जिसको क्षति नहीं पहुँच रही है, वह हाथ भी शरीर की रक्षा के लिये एवं स्व रक्षा के लिये विरोध करेगा, प्रतिकार करेगा। इसी प्रकार प्रकृति के किसी भी अवयव को यदि मनुष्य क्षति पहुँचाता है, तो मनुष्य को जान लेना चाहिये कि सम्पूर्ण प्रकृति उसके विरोध में विप्लव करेगी और मनुष्य को जान लेना चाहिये कि सम्पूर्ण प्रकृति उसके विरोध में विप्लव करेगी और मनुष्य समाज को ध्वंस करके ही रहेगी।

केवल मांस खाना ही हिंसात्मक नहीं है परन्तु किसी प्रकार की चर्म की वस्तु जैसे-चप्पल, बेग, बेल्ट सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तु जैसे-नेलपॉलिश, लिपिस्टीक, शैम्पू, इत्र, सेंट, स्नो, पाउडर, मूल्यवान् साबुन आदि जीवों के शरीर के अवयवों से बनते हैं, इनका प्रयोग करना भी हिंसा है। हिन्दू धर्म में कहा है-

मद्य मांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्द भक्षणम्।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थ यात्रा जपस्तपः।। (महाभारत)

मद्यपान, मांस भक्षण, रात्रि भोजन, जमीकन्द सेवन (आलू, प्याज, मूली, गाजर, लहसुन आदि) जो करता अर्थात् खाता है उसकी तीर्थ यात्रा, जप-तप सब वृथा हो जाते हैं।

यावंति पशुरोमाणि पशु गात्रेषु भारतः।
तावद्वर्षसहस्राणि पच्यते पशु घातकाः।।
शुक्रशोणितसंभूतं यो मांस खादते नरः।।
जलेन कुरूते शौचं हसंते तत्र देवताः।
अस्थिनि वसति रूद्रस्तथा मांसे जनार्दनः।
शुक्रे वसति ब्रह्मा तस्मान्मांस न भक्षयेत्।। (विष्णु पुराण)

पशु में जितने रोम रहते हैं, उस पशु के घात से उप पशुघातक को उतने ही हजार वर्ष नरक में कष्टों को प्राप्त करना पड़ता है। जैसे एक जीव में 100 रोम है, तो उस पशुघातक को 100 ग 1000 त्र 1ए00ए000(एक लाख) वर्ष तक नरक में यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी। विचार करो कि एक जीव में कितने करोड़ रोम रहते हैं, जो उस पशुघातक को नरक में कितने वर्ष तक दुःख उठाना पड़ेगा।

प्राणियों का शरीर, रज-वीर्य से निर्माण होता है। जो मांस-अण्डे वगैरह खाता है वह दूषित रज-वीर्य को खाता है। मॉंस खाकर ऊपर से पानी से शरीर की शुद्धि कराने से कभी भी शुद्धि नहीं हो सकती है। इसलिये मांस भक्षक जल में शुद्धि करता है तब देवता लोग उसे देखकर हँसते हैं।

जीव की हड्डी में रूद्र वास करते हैं। मांस में विष्णु वास करते हैं। शुक्र में ब्रह्मा वास करते है इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये।

यूपं छित्त्वा पशुन् हत्त्वा कृत्त्वा रूधिर कर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्ग नरकं केन गम्यते।।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य सुसंयमः।
मद्य मांसादि त्यागश्च तद्धै धर्मस्य लक्षणम्।।

(महाभारत, शांति पर्व)

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य सुसंयमम्।
मद्य-मांस-मधु त्यागो रात्रि भोजन वर्जनम्।। (मार्कण्डेय पुराण)

जो यूप (यज्ञ की विशेष लकड़ी) को छेदकर, पशु को मारकर, रूधिर को कीचड़ बनाकर यदि स्वर्ग जाने तो नरक किस पाप से जायेगा?

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, उत्तम संयम, मद्य-मांस सेवन त्याग, रात्रि भोजन त्याग धर्म है।

भांग मछली सुरापान जो-जो प्राणी खाये।
तीर्थ बरत अरू नेम किये सबे रसातल जाये।। (कबीर)

भांग खाना, मछली खाना, सुरापान, जो-जो प्राणी करते हैं वे कितनी भी तीर्थ यात्रा करें, व्रतादि पालन करें, नियम धारण करें तो भी वे सब रसातल (नरक) में जायेंगे।

मुसलमान मारे करद, हिन्दू मारे तलवार।
कहे कबीर दोनों मिली, जाये जम के द्वार।।

मुसलमान करद (चाकू से गला काटता) करता है, हिन्दु तलवार से काटता है, कबीर कहते हैं कि मुसलमान और हिन्दु दोनों मिलकर यम के द्वार पर जायेंगे।

मांसाहारी मानवा, परतछ राक्षस अंग।
तिन की संगती मत करो, वपरत भजन में भंग।।

जो मांस खाता है वह प्रत्यक्ष राक्षस है, उसकी संगति मत करो क्योंकि उससे भजन-कीर्तन में प्रभु नाम गाने में, धर्म कार्य में विपत्ति आती है।

है भला तेरा इसी में, मांस खाना छोड़ दे।
इस मुबारक पेट में, कब्र बनाना छोड़ दे।।

इसी मे तेरी भलाई है कि तू मांस खाना छोड़ दे। मांस खाने से तेरा पवित्र पेट कब्रखाना बन जाता है। तू नहीं खायेगा तो तेरा पेट कब्रखाना नहीं बनेगा।

जो शिर काटे और का, अपना रहे कटाय।
धीरे-धीरे नानका, बदला कहीं न जाय।।

जो दूसरों का सिर काटता है, उसका सिर एक न एक दिन कट जाता है। सिक्ख के आदि गुरु नानक देव कहते हैं कि बदला कभी चूकता नहीं है।

जो रक्त जंगे कापड़े, जामा होवे पलीत।
जो रक्त पीवे मानुषा, तिन क्यों निर्मल चित्त।।

कपड़े में रक्त लगने पर कपड़ा अपवित्र हो जाता है और जो मनुष्य रक्त पीता है, मांस खाता है, उसका मन पवित्र कैसे हो सकता है?

***Thous shaln't kill.* (ईसा मसीह) कोई भी प्राणी को मत मारो।**

हिंसा प्रसूतानि सर्व दुःखानि।

हिंसा सम्पूर्ण दुःखों को जन्म देती है।

Animal food for those,
Who will fight and die,
And vegetable food for those,
Who will live and think.

मांस आहार उनके लिये है, जो लड़ेंगे एवं मरेंगे। शाकाहार उनके लिये है, जो जीवित रहेंगे एवं चिन्तन करेंगे।

हिन्दू धर्म में कहा गया है कि पहले धर्मात्मा शाकाहारी ब्राह्मण धर्म-शक्ति से आकाश में उड़कर गमन करते थे, परन्तु ब्राह्मण लोगों के मांस खाने से धार्मिक शक्ति क्षीण हो गयी तब से ब्राह्मण लोग जमीन पर चलने लगे। इससे सिद्ध होता है कि मांस नहीं खाने से कितनी आध यात्मिक शक्ति बढ़ती है और खाने से कितनी क्षति होती है।

सम्पूर्ण जीवन में जो मांस को विषतुल्य त्याग कर देता हैः वशिष्ठ भगवान् कहते हैं कि वह स्वर्ग सम्पत्ति को प्राप्त करता है। यथा-

यावज्जीवं च यो मांस विषवत्परिवर्जयेत्।

वशिष्ठो भगवान्नाह प्राप्नुयात् स्वर्गसम्पदम्।

अन्यत्र भी कहा है-

रक्त मात्र प्रवाहेण स्त्री निंद्या जायते स्फुटम्।

द्विधातुजं पुनर्मांसं पवित्रं जायते कथं।।

ऋतुवती के समय में अर्थात रज निकलने से स्त्री अपवित्र हो जाती है और निश्चय से निन्दनीय होती है। परन्तु मांस, रज एवं वीर्य से बनता है तब मांस पवित्र कैसे हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि इसमें तो दो अपवित्र वस्तुओं का मिश्रण है।

(3)द्यूत (जुआ)व्यसन-

जुआ खेलने से राग-द्वेष उत्पन्न होता है, झूठ बोलना पड़ता है, हिंसादि होती है। जिससे पापास्रव होता है, पाप से अनंत दुःख मिलता है।

जुआ में जीत होने से जुए के प्रति आसक्ति होती है, जिससे वह और जुआ खेलता है। जुआरियों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है। जुआरी लोग अपनी जय के लिये बहुत ही झूठ बोलते है जिससे कलह उत्पन्न होता है, उस कलह के कारण परस्पर मार-पीट भी होती है, जिससे हत्या भी होते हुए देखी जाती है। इन्हीं कारणों से पाप बन्ध होता है जिससे इहलोक व परलोक में अनन्त दुःख उठाना पड़ता है।

महान् धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर ने भी जुआ के कारण राज्य सहित द्रौपदी को भी दाँव पर लगाया था और जिससे उनको 12 वर्ष राज्य त्याग कर जंगल में रहना पड़ा था तथा एक वर्ष अज्ञातवास में रहना पड़ा था। इतना ही नहीं कुलवधू सती द्रोपदी को दुष्ट दुःशासन ने भरी सभा में नग्न करने के लिये प्रयत्न किया था। महाराज नल ने भी सर्व गुण सम्पन्न होने पर भी मात्र एक जुआ के दुर्व्यसन में पड़कर वनवास में दर-दर ठोकरें खायी थी। पहले राजा लोग जुआ में सर्वस्व गँवाकर दर-दर के भिखारी बन जाते थे। इस प्रकार पुराणों में देखने में आता है। इसलिये जुआ खेलना बहुत ही अनर्थ का कारण है।

लाटरी का टिकिट लेना, सट्टा खेलना, शर्त लगाना, ताश खेलना आदि सब जुआ के ही विविध अंग है।

(4) वेश्यागमन व्यसन के दुष्परिणाम का वैज्ञानिक एवं धार्मिक विश्लेषण-

वेश्यागमन करने से ब्रह्मचर्य-भावना का घात होता है, वेश्यागमन अनीति का मूल है, इह लोक-परलोक में दुःखदायी है।

वेश्या को पण्यस्त्री भी कहते हैं। वे स्त्रियाँ पैसा लेकर अपने शील को पर पुरुष को बेचती है। रूपयों के लाभ से वे रोगी, पापी, हीन, दीन व्यक्तियों के साथ भी भोग करती हैं जिससे उन की योनि में अनेक संक्रामक रोग होते हैं। उनके साथ जो भोग करता है, उसके लिंग में रोग हो जाता है जिससे मरण काल के समान तीव्र वेदना होती है। वह पर स्त्रीगामी पुरुष लज्जा के कारण किसी को उस रोग के बारे में नहीं बताता है, जिससे उसका औषध-पानी होना भी कठिन हो जाता है। इस प्रकार वह पुरुष

रूपया देकर रोगों को खरीदता है। उसे सब कोई घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वेश्या में आसक्त होकर अपनी सारी सम्पत्ति दे डालता है जिससे गरीबी के दिन गुजारता है, परिवार के लोगों को कष्ट में डालता है। तद्भव मोक्षगामी, स्वाध्याय प्रेमी, ज्ञानी चारूदत्त जिसने विवाह के पश्चात् अपनी नवयुवती सुन्दरी स्त्री को देखा तक भी नहीं था, वही चारूदत्त वंसतसेना नाम की वेश्या के कारण 12 वर्ष तक वेश्या के घर में रहा और 32 लाख स्वर्ण दीनारें खो डाली एवं अन्त में संडास गृह में उसे डलवा दिया गया। इस प्रकार धन, यौवन, धर्म, स्वास्थ्य, शील आदि को नाश करने वाला वेश्यागमन का त्याग करना चाहिये।

महान् दुःख की बात है कि कुछ प्रादेशिक सरकार के द्वारा (महाराष्ट्र सरकार) वेश्यावृति को बढ़ावा देने के कारण वेश्याओं की संख्या बढ़ रही है। विवेकी सरकार तथा जनता को चाहिये कि इसका पूर्णरूप से विरोध करें, जिससे देश में शील, न्याय नीति कायम रहे।

वेश्या के यहाँ आना जाना, उसके साथ सहवास करना, वेश्याओं का नृत्य देखना, उसका गाना सुनना, उनसे लेन-देन करना आदि वेश्यागमन के ही अंग है।

वेश्यागमन का दुष्परिणाम-

जो भौतिकवादी, विलासप्रिय अमेरिका आदि देश शील का मखौल उड़ाते थे, वे आज एड्स रोग के कारण शील को महत्त्व देने लगते हैं। नीतिकारों ने कहा है-

"आर्त्त नराः धर्मपरा भवन्ति"
दुःखी जन धर्मपरायण होते हैं।

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, जो दुःख काहे को होय।।

यह एड्स रोग वेश्यागमन से होता है। इसका वर्णन नवभारत टाइम्स में 29 मई,1988 में आया हुआ विषय यहाँ उद्धृत कर रहे हैं-

लेख का नाम 'यौन क्रान्ति का अंत' ''जान देने और दिल लुटाने

के मुहावरे आज सच्चे बन गये हैं। मनचलों की दुनिया में खलबली मच गई है। रंगीन रातें संगीन बनती जा रही है। लाल बत्ती वाले इलाकों में आशिक और माशूक बे-मौत मरे जा रहे हैं। तमाम वेश्याएँ विष कन्याओं में बदलती जा रही है। परकीया प्रेम की दुहाई देने वाने घर लौट रहे हैं। कौमार्य और ब्रह्मचर्य जैसी गई-गुजरी बातें फिर से श्रद्धा की पात्र हो गई है। जो पश्चिमी देश आधुनिकता के नाम पर उन्मुक्त यौन उत्श्रृंखलता में आकंठ डूबे हुये थे, वे आज अपने किए पर पछता रहे हैं। तथाकथित यौन क्रान्ति आखरी साँसे गिन रही है।''

यह अजीब जीव एक किस्म का वायरस यानी विषाणु है। जितना छोटा उतना खोटा है। यह वायरस इतना छोटा है कि इसका व्यास 100 नेनो मीटर या 0०1 माईक्रो मीटर मापा गया है। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव ने आज लगभग 133 देशों में एड्स का असाध्य रोग फैलाकर ऐसी दशहत पैदा की है कि उसके सामने परमाणु युद्ध का आतंक भी नहीं रह गया है। इस रोगाणु की शोध 1983 में पेरिस में डॉक्टर लुक मोटरनीर ने और 1984 में अमेरिका के डॉक्टर रॉबर्ट गैली ने किया है।

एड्स का वायरस आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा और आतंक का मानो वामन अवतार है। एड्स का वायरस मानव देह के अन्दर खून में पलता है। पहले यह हमारे खून की प्रतिरक्षा प्रणाली के पहरेदारों को दबोचता है, उसके बाद चाहे लू हो या निमोनिया किसी भी रोगाणु के खिलाफ रोगी के खून में एंटीबाडी नहीं बनती त्मेपेजंदबम हतवू नहीं करता है। एक बार पूरे खून में एड्स के विषाणु फैल जाएँ तो चन्द महीनों में ही मौत रोगी को अपने पंजे में दबोच लेती है। अमेरिका में सतरादिक में ब्लू फिल्मों के बेताज बाहशाह माने जाने वाले जॉन हेल्मस का 14000 रमणियों का रिकार्ड है, जुलाई, 1986 में एड्स के वायरस के चपेट में आये और मार्च 1988 में निमोनिया ने प्राण लिये। अल्सर, अतिसार, बुखार और वजन घटते जाने से एड्स के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। धीरे-धीरे ओजहीन होता हुआ एड्स रोगी सूखकर काँटा हो जाता है। एड्स का वायरस सबसे पहले दिमाग पर हमला बोलता है और रोगी इसका शिकार हो जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अकेले अफ्रीकी देशों में ही 20 लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों के देह में एड्स का वायरस पल रहा है। सारी दुनिया में 50 लाख से 1 करोड़ लोग इस घातक वायरस के शिकार से जीते-जागते मनमाने घूम रहे हैं। इनमें 15 लाख अकेले अमेरिका में है।

यूनिसेफ की ताजा रिपोर्ट के अनुसार अगले दशक में 50 लाख 3 करोड़ तक बच्चे भी एड्स के शिकार हो जाएँगे। इस समय भी 6 हजार बच्चे जाम्बिया में और 14000 अमेरिका मे एड्स से पीड़ित हैं, इनको यह रोग माता-पिता से लगा है। स्तनपान से उतना खतरा नहीं है। केवल दो बच्चों को यह रोग एड्स ग्रस्त माँ के स्तनपान से पहुँचा है। रक्त शुक्राणु और खराब सुईयों के कारण भी एड्स फैलता है।

तथाकथित यौन-क्रान्ति आखिरी साँसे गिन रही है। दुनिया भर के दुराचार के अड्डों में सनसनी फैल गई है। जो काम संत-महात्मा नहीं कर पाये, वह 'एड्स' की बीमारी वाले एक निहायत क्षुद्र प्राणी ने कर दिखाया। इसीलिये एक बार फिर पश्चिम की स्कूलों में नैतिकता की दुहाई दी जा रही है।

मैथुन हिंसा–

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन ने एक बताया था 'मेडिकल शोध से सिद्ध हुआ है कि 25 बिन्दु वीर्य में 60 मिलियन (6 करोड़) से 110 मिलियन तक सूक्ष्म जीव रहते हैं। उन्होंने स्वयं सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वीर्य के जीवों को चलते-फिरते हुये देखा है। जीवों का आकार (अनुमानतः) प्रायः मनुष्य जातीय सूक्ष्म लब्धपर्याप्तक जीव के समान है। माता का रज एसिड (अम्ल) गुण युक्त होता है। पिता का वीर्य एल्केलाइन (क्षार) गुण युक्त होता है। संयोग में रज एवं वीर्य के संयोग होने पर एसिड एवं एल्केलाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रतिक्रिया होती है, उससे उन जीवों का संहार हो जाता है। वे आगे बोले कि '' जबसे मैंने मेरी आँखों से वीर्य में बिलबिलाते हुये जीवों को देखा तब से अन्तरंग में मुझे बहुत ग्लानि हुई और मैं ब्रह्मचर्य का अधिक से अधिक पालन करने लगा।''

यह आपने एक डॉक्टर के द्वारा कहा हुआ स्वयं का अनुभव पढ़ा। इस विषय को विशेष लिखने का कारण यह है कि अज्ञानता के कारण मनुष्य समाज को जो शारीरिक-मानसिक क्षति पहुँच रही है, इससे मनुष्य समाज की रक्षा हो, स्वयं की अज्ञानता का बोध हो। यदि कोई एक भी मनुष्य आंशिक रूप से भी ब्रह्मचर्य को आचरण में लाये तो मेरा लिखना सार्थक होगा।

मैंने पहले ही सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र से जाना था कि वीर्य में सूक्ष्म जीव होते हैं। जब डॉ. साहब ने बताया तब मैंने सोचा कि मैं भी परीक्षा करके देख लूँ कि जीव कैसे होते है और कितने रहते हैं। उसके 2.3 दिन के बाद ही सूक्ष्मदर्शक यन्त्र लाकर मुझे दिखाया। यन्त्र को पहिले 50 गुना करके देखाः तब हमने सूक्ष्म जीवों की राशि देखी जो किल-बिल कर रही थी। उनका आकार उस समय सूक्ष्म पुष्पराग (रेणु) के समान दिखाई दिया। पुनः 500 गुणा करके देखा। उस समय उनका आकार अत्यन्त छोटे मेंढ़क के पूँछ सहित प्यूपा आकार का था। मैं बाल्य-विद्यार्थी अवस्था से ही विद्या प्रेमी, सत्य उपासक, परीक्षा प्रधानी रहा इसलिये बहुत समय तक विभिन्न प्रणाली से देखा एवं परीक्षण किया। परीक्षण करते-करते बोला।'' जिस समय भौतिक-विज्ञान का नाम भी नहीं था, उस समय तथा उससे भी करोड़ों अरबों वर्ष पहिले आदिनाथ, महावीर आदि आध्यात्मिक महावैज्ञानिकों ने यह बात बिना इन्द्रियों और बिना यन्त्र से आध्यात्मिक ज्योति से देखकर दुनिया के सामने रखी थी। इसको पहिले कोई नहीं मानते थे। जैन शास्त्र जैसे गोम्मटसार-जीवकाण्ड, धवला सिद्धान्त शास्त्र, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, मोक्षशास्त्र की टीका, श्रावकाचारादि में इसका स्पष्ट वर्णन हैं।''

कुछ शास्त्रों में लिखे हुए विषय को वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये-

येनिस्तन प्रदेशेषु हृदि कक्षान्तरेष्वपि।
अतिसूक्ष्माः मनुष्याश्च जायन्ते योषिताम्।।

(प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

अति सूक्ष्म मनुष्यजातीय जीव स्त्रियों के योनि, स्तन, हृदय, काँखादि स्थानों में होते हैं।

मेहुण सण्णारूढो मारई णवलक्ख सुहूम जीवाई।
इय जिणवरेंहिं, भणियं वज्झंतर णिग्गंथ रूवेहिं।।(भाव संग्रह)

मैथुन संज्ञा से (काम चेतना से) उत्तेजित होकर जब मनुष्य भोग करता है, तब वह नौ लाख (900000) जीवों को मारता है, ऐसा अन्तरंग बहिरंग बन्धनों से रहित जिनेन्द्र देव ने कहा है। (कोई-कोई बताते हैं 9 लाख कोटि जीव मरते हैं) (900000ए000000 जीव)

नवलक्षा जीवोघ्त्रैव म्रियन्ते मैथुनेन भो।
इत्येवं जिननाथेन प्रोक्तं केवल लोचनात्।। (प्रश्नोत्तर श्रा.)

ं जिननाथ, चिज्जोतिमय केवल आध्यात्मिक रूप अन्तःचक्षु से देखकर बताते हैं कि मैथुन से 9 लाख जीव मरते हैं।

णर सम्मुच्छिम जीवा लद्धिअपज्जत्तगा चैव।

मनुष्य जातीय सूक्ष्म जीव लब्धि अपर्याप्तक नियम से होते है। अर्थात् शरीरादि पर्याप्ति पूर्ण होने के पहिले मर जाते हैं।

हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।
बह वो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत्।।
(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

जैसे तिल से पूर्ण नाली में गरम लोह छड़ डालने से तिल भुनकर जल जाते हैं, इस प्रकार संभोग क्रिया में अनेक जीव जलकर मर जाते हैं।

अभी विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण रूपी अग्नि से महावीर की वाणी तपकर निखर उठी। इस प्रकार सत्य विज्ञान रूपी अग्नि जितनी जलेगी उतनी ही महावीर की वाणी अधिक से अधिक निखरेगी। असत्य रूपी कोयला जलकर भस्म हो जाता है, परन्तु सत्यरूपी सोना तपकर शुद्ध बनता है, और चमकता है।

मैंने विचार किया इतने सुक्ष्म विषय को भी सन्मति-वर्धमान-महावीर ने परीक्षण करके और मैथुन से होने वाले जीव विध्वंस को जानकर विश्व

को अमर सन्देश दिया-'तिलोय पूज्य हवइ बंभं' तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है। वीर डंके की चोट पर बोलें, अन्य हिंसादि पाप बिना भाव से हो भी सकते हैं, किन्तु अब्रह्म पाप बिना भाव से नहीं हो सकता है।

मैं स्वयं परीक्षा प्रधानी होने से इस परीक्षण से मेरी श्रद्धा धर्म में और भी अधिक दृढ़ हो गई। इसको मैं विज्ञान का एक वरदान मानता हूँ। विज्ञान के प्रकाश में वर्तमान, अज्ञान, अन्धकार, रूढ़िवाद, भेड़-चाल आदि रूपी तमस् नष्ट हो रहा है। मनुष्य अभी विवेक से परीक्षण करके, तर्क से घिसकर के असत्य को त्यागकर सत्य को ग्रहण कर रहा है। धर्मान्धता, हठग्राहिता, धर्म में आडम्बरता, तोतारटंत, बलिदान, सतीदाह प्रथा, धर्म के नाम पर अन्याय-अत्याचार-दुराचार-शोषण-ठगबाजी आदि का जो लोप हो रहा है, उसका श्रेय कुछ अंश से आधुनिक विज्ञान, शिक्षा, सभ्यता को है। इसे मैं ही क्या समस्त प्रबुद्ध मानव स्वीकार करने से इन्कार नहीं करेंगे। इस दिक् में मैं सभ्य मानव का हृदय से आह्वान करता हूँ।

हमको सत्य का साक्षात्कार करने के लिये असत्य को त्याग कर आगे बढ़ना है परन्तु एक ख्याल जरूर रखना है धर्म से या पुरानी मान्यता से नफरत कर उसमें स्थित सत्य के अंश को त्याग नहीं करना। नहीं तो ''चौबे छब्बे होने के लिये गये, हो गये दुब्बे।'' कहा है-

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणी निसेवन्ते।
ध्रुवाणी तस्य नस्यन्ति अध्रुवाणी नष्टमेव च।। (कौटिल्य)

जो ध्रुव (सत्य) को छोड़कर असत्य का सेवन करता है उसका सत्य नष्ट हो जाता है, असत्य तो नष्ट है ही।

(5) शिकार व्यसन-

हिंसा में आनन्द मानकर निर्दोष जीवों को मरना शिकार है, यह कार्य अत्यन्त गर्हित है एवं पाप के लिये कारण है।

शौक के लिये हिंसा में आनन्द मानकर निर्दोष निरपराधी पशुओं को निर्दय होकर क्रूर भाव से मारना शिकार व्यसन है। जैसे अपने प्रिय प्राण अपने को प्रिय है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव को अपने-अपने प्राण प्रिय

है। स्व को क्षति पहुँचने पर दुःख होता है उसी प्रकार दूसरों को क्षति पहुँचाने पर दुःख होता है। अपने प्रियजन को किसी के कष्ट देने पर जैसे हमको कष्ट होता है, उसी प्रकार एक पशु को कष्ट देने पर उसके परिवार एवं प्रिय जनों को भी कष्ट होता है। इस प्रकार विचार करके विवेकी मनुष्य को चाहिये कि किसी भी प्राणी का शिकार न करें।

हिन्दु धर्म में वर्णन है-मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी एक मृग के शिकार के लिये सीता को खो बैठे, जिससे उन्हें अनेक कष्टों को उठाना पड़ा एवं राक्षस वंश का तथा लंका का विध्वंस हुआ। शिकार के कारण दशरथ ने युवक अवस्था में अज्ञानता से शब्द भेदी बाण से श्रवणकुमार को मार डाला जिससे उसके माता-पिता ने उसे अभिशाप दिया। उसके कारण ही रामचन्द्रजी का वियोग हुआ और वियोग की वेदना के कारण दशरथ का दयनीय मरण हुआ।

केवल शिकार करना ही शिकार नहीं है किन्तु शौक के लिये पशुओं को जैसे-मुर्गा-मुर्गा, बकरा-बकरा, सांड-सांड, सांड और पहलवान आदि को लड़वाना भी शिकार में गर्भित है क्योंकि इस में भी निष्प्रयोजन जीवों का घात होता है।

(6) चौर्य व्यसन–

मालिक की अनुमति बिना पर द्रव्यों का अपहरण करना चोरी व्यसन है, इससे अंगच्छेद आदि दण्ड मिलते है, अर्थ दण्ड मिलता है, जेल में भी जाना पड़ता है।

(7) परनारी गमन–

परनारी गमन करना मानो परम नरक है। केवल परनारी की इच्छामात्र से दुष्ट रावण मरण को प्राप्त हुआ।

पर स्त्री, माता-बहन, सुता (पुत्री) के समान है। परस्त्री के साथ गमन करना मानो मातादि के साथ रमण करना है। उससे महान् पाप होता है, लोक निन्दा होती है, यह जीवन नारकी के समान हो जाता है तथा पर जन्म में नरक गति की प्राप्ति होती है। पर स्त्री रमण करना तो दूर की बात है, किन्तु पर स्त्री की इच्छामात्र से महान् शक्तिशाली विद्याधर शलाका

पुरुष रावण का तथा उसकी जाति का लंका सहित नाश हुआ एवं नरक में जाकर अत्यन्त दु:ख उठा रहा है।

केवल परस्त्री रमण मात्र व्यसन नहीं है किन्तु परस्त्री को आसक्तिपूर्व देखना, स्पर्श करना, गुप्त बातें करना, गुह्य अंगों का निरीक्षण करना, अश्लील सिनेमा, टी.वी., फोटो आदि देखना भी पापमय है।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-2)

1. व्यसनों के नाम बताओ?
2. व्यसन का क्या-क्या अर्थ है?
3. मद्य व्यसन से क्या हानि है?
4. मद्य व्यसन में अन्तर्गत क्या-क्या होते हैं?
5. मद्य, तम्बाकू, चाय में कौन-कौन से विष रहते हैं?
6. मांस व्यसन से क्या हानि होती है?
7. मांस में कौन सा विष रहता है?
8. अण्डा शाकाहार क्यों नहीं हैं?
9. प्राकृतिक रूप से मनुष्य शाकाहारी क्यों हैं?
10. मांसाहार से प्रदूषण कैसे बढ़ता है?
11. अन्यान्य धर्म में मांसाहार के बारे में क्या बताया गया है?
12. द्यूत से क्या हानि है?
13. द्यूत के विविध अंग क्या है?
14. वेश्यागमन का दुष्परिणाम क्या है?
15. वेश्यागमन से कौन-कौन से पाप होते है?
16. शिकार व्यसन से क्या हानि है?
17. परनारी गमन से क्या हानि है?

तृतीय परिच्छेद

श्रावक के अष्ट मूलगुणों का वर्णन

मद्य मांस मधु निशासन, पंचफली विरति पंचकाप्तनुती।
जीवदया जल गालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः।।

(1) मद्य, (2) मांस, (3) मधु इन तीन प्रकार का त्याग, (4) रात्रि भोजन का त्याग, (5) पंच उदम्बर फलों(1 बड़ 2. पीपल, 3. गूलर, 4. अंजीर, 5ए कठुमर) का त्याग, (6) नित्य त्रिकाल देव-प्रार्थना करना, (7) दया करने योग्य प्राणियों पर दया करना और (8) जल छानकर पीना अर्थात् काम में लाना इस प्रकार 8 मूलगुण कहे हैं।

(पहले (1)मद्य (2) मांस का वर्णन हो चुका है वहाँ देखने के लिये कष्ट करें)

(3) मधु त्याग–

मधु मक्खियाँ घूम-घूम कर पुष्पों से मधु को मुँह में भरकर जाती है, और अपने छत्ते में उस मधु को उल्टी करके संग्रह करती है। मधु(शहद) को प्राप्त करने के लिये छत्ते के नीचे धुआँ करके मधु-मक्खियों को मारकर उस छत्ते को बाद में निचोड़कर मधु निकाला जाता है, जिससे अनेक मधु मक्खियों के अण्डे फूटकर उनका रस भी मधु के साथ आ जाता है। प्रथमतः यह मधु-मक्खियों की वांति (उल्टी) है। कोई भी स्वयं की वांति (उल्टी) होने पर उसे घृणा के कारण नहीं खाते हैं, फिर विचार करना चाहिये कि मक्खियों की वांति घृणास्पद कैसे नहीं होगी? अर्थात् अवश्य होगी।

उस मधु में उसी वर्ण के असंख्यात सूक्ष्म जीव रहते हैं, जिससे मधु सेवन से उन जीवों का घात हो जाता है। मधु(शहद) मधु-मक्खियों का संग्रहित भोजन है। मधु निकालना अर्थात् उनके आहार को छीन लेना है। मधु निकालते समय अनके अण्डों का संहार हो जाता है, जिससे महान् हिंसा होती है। उस मधु में उन मधु-मक्खियों की टट्टी, पेशाब मिले रहते हैं। कदाचित् मधु-मक्खियों के पालन से, बिना मधु-मक्खियों को मार कर मधु प्राप्त करने पर भी उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात जीव रहते हैं

तथा उस मधु सेवन से उन जीवों का संहार हो जाता है। दूसरा पक्ष यह है कि मधु-मक्खियों की वांति, टट्टी-पेशाब मधु में होते है।

हिन्दू धर्म में कहा है-

सप्त ग्रामेषु यत्पापमग्निना भस्मसात्कृते।
तन्पापं जायते जंतोर्मधुविंद्वेक भक्षणात्।। (मनुस्मृति)

सात ग्रामों को अग्नि में जलाने से जो पाप होता है वह पाप एक बिंदु मात्र मधु खाने से होता है इसलिये विवेकी पुरुषों को मधु का त्याग करना चाहिये। यदि औषधि के लिये मधु का प्रयोग करना पड़ा तो उसके बदले गुड़, चासनी, मुनक्का आदि मधु रस का प्रयोग करना चाहिये परन्तु मधु सर्वथा त्यजनीय है। डॉक्टर लोग जो उसके सेवन के लिये सलाह देते हैं वह सर्वथा अनुचित है।

(4) रात्रि भोजन त्याग का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण–

रात को सूर्य की रश्मि के अभाव से क्षुद्र पतंगा आदि जीव गुप्त स्थान से निकल कर विचरने लगते हैं, वे सब आहारादि वस्तुओं में गिर भी जाते हैं, उस आहार का भक्षण करने से उन जीवों का भी भक्षण हो जाता है, जिससे हिंसा का दोष एवं मांस भक्षण का दोष लगता है, उन विषाक्त जीवों से अनके रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। आहार में जूँ खाने से जलोदर रोग हो जाता है, मकड़ी खाने स कुष्ठरोग हो जाता है, मक्खी खा जाने से वमन होता है, केश खाने से स्वर भंग हो जाता है, चींटी खाने से पित्त निकल आता है, विषभरी छिपकली के विष से आदमी को अनेक रोग होते है एवं मरण को भी प्राप्त हो जाता है। रात को सूर्य रश्मि के अभाव से पाचन शक्ति मंद हो जाती है, जिससे खाया हुआ भोजन ठीक से पाचन नहीं होता है। उसे बदहजमी, गेस्टिक, पेट दर्द, सिर दर्द आदि रोग हो जाते हैं। इस प्रकार रात्रि भोजन सर्वत्र मांस भक्षण के सदृश्य हानिकारक होने से त्यजनीय है।

सूर्य-किरण में अनेक गुण हैं। विटामिन डी भी है। सूर्य-किरण से विषाक्तकीट पतंग-संचार नहीं करते हैं। वायु, वातावरण शुद्ध हो जाता है, पाचन शक्ति बढ़ती है। दिन को वनस्पति के अंगार विश्लेषण के कारण प्राण वायु (आक्सीजन) छोड़ती है जिससे दिन में पर्याप्त प्राण वायु मिलती

है। दिन में जितना प्रकाश रहता है उतना प्रकाश और स्वास्थ्यकर प्रकाश, कृत्रिम कोई भी प्रकाश में नहीं हो सकता है। और रात को कृत्रिम प्रकाश से कीट-पतंगे अधिक संख्या मे आकर्षित होकर प्रकाश के स्थान में आते हैं। यह सब आप सब को अवगत है ही। इसी प्रकार अनेक कारणों से रात को भोजन करना धर्मतः एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानि कारक है।

दिवसस्य मुखेचान्ते, मुक्त्वा द्वे द्वे सुधार्मिकैः।
घटिके भोजनं कार्यं, श्रावकाचार चंचुभिः।।

धर्मात्मा श्रावक को सवेरे और शाम को आरम्भ और अन्त की दो-दो घड़ी (48 मिनट) छोड़कर भोजन करना चाहिये।

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक एवं डॉक्टर लोगों ने सिद्ध किया है कि रात्रि में सूर्य किरण के अभाव में भोजन करके सोने से खाया हुआ भोजन ठीक से पाचन नहीं होता है इसलिये अनेक रोग होते हैं। इसलिय रात्रि सोने के 3-4 घंटे पहले अल्पाहार करना चाहिये जिससे आहार शयन के पहले पच जायेगा। हिन्दु धर्म में कहा भी है-

चत्त्वारो नरक द्वाराणि, प्रथमं रात्रि भोजनम्।
परस्त्री गमनं चैव, संधानानंतकायिके।।

नरक के 4 द्वार हैं: (1) रात्रि में भोजन करना (2) पर स्त्री गमन करना (3) अचार खाना (4) जमीकन्द खाना।

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रूधिरमुच्यते।
अन्नं मांसं समं प्रोक्तं, माक्रण्डेय महर्षिणा।।

सूर्य अस्त होने के बाद जल को रुधिर कहते हैं और अन्न को मांस के समान कहते हैं यह मार्कण्डेय महाऋषि ने कहा है।

मृत स्वजन मात्रेघपि, सूतकं जायते किल।
अस्तंगते दिवानाथे, भोजनं किमु क्रियते।।

केवल स्वजन मरने से सूतक होता है, परन्तु जो जगत् बन्धु सूर्य है उसके अस्त होने पर भोजन क्यों करते हो?

ये रात्रौ सर्वथाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते।।

जो रात का सर्वथा आहार-त्याग करता है, उस ज्ञानी के एक महीन के 15 दिनों के उपवास का फल मिलता है।

रात्रि भोजन के साथ ही रात को बनाया हुआ आहार भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि रात्रि में बनाते समय अनेक सूक्ष्म जीव आहार में गिरकर आहार में मिल जाते हैं। इसी प्रकार रात्रि भोजन में हिंसा होती है, अनेक रोग उत्पन्न होते है, और वह जीव मरने के पश्चात् रात्रिचर जीव में जन्म लेते हैं अर्थात् उल्लू, सिंह, व्याघ्र, बिल्ली आदि योनियों में उत्पन्न होते है।

(5) पंचफल विरति-

पाँच उदुम्बर फलों का त्याग करना चाहिये (1)बड़ (2) पीपल (3) गूलर (4) अंजीर (5) कठूमर।

उपरोक्त पाँचों फलों में साक्षात् त्रस जीव चलते हुए दिखायी देते हैं उन फलों के भक्षण से विषाक्त त्रस जीवों का भक्षण हो जाता है, हिंसा होती है एवं विभिन्न रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं। इसलिये धर्मतः एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी पंच उदुम्बरों का भक्षण हानिकारक होने से वर्जनीय है।

(6) पंचगुरु भक्ति

जो आध्यात्मिक गुणों से अलंकृत रहते हैं, जो गुणों से गुरु (भारी) रहते हैं जो मनुष्य समाज के लिये आदर्श स्वरूप, अनुकरणीय, समाज, राष्ट्र के मार्गदर्शक होते हैं और जिनके लिये स्व-पर का भेद-भाव नहीं रहता है, ''वसुधैव स्व कुटुम्बकम्'' अर्थात् जिनका कुटुम्ब पूर्ण विश्व है उनको गुरु कहते हैं। पे पाँच प्रकार के हैं-

(1) शरीरधारी जीवन्मुक्त निर्मल वीतराग परमात्मा 'अरिहंत' (2) शरीर रहित, निरंजन, शुद्ध, बुद्ध, परमात्मा ''सिद्ध'' (3) जो स्वयं धर्म के मार्ग पर सतत विचरण करते हैं एवं अन्य धर्म प्रेमी शिष्य वर्गो को धर्म के रास्ते में चलने के लिये प्रशिक्षण देते हैं ऐसे 'आचार्य परमेष्ठी' (4) जो स्वयं सत्य के साक्षात्कार के लिये ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करते हैं एवं दूसरों को करवाते हैं, ऐसे ज्ञानधनी ''उपाध्याय संत'' (5) जो आत्म विशुद्धि के लिये एवं शाश्वतिक शांति के लिए आत्म साधन में तत्पर रहते हैं, अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थि से रहित 'निर्ग्रन्थ साधुओं' को मिलाकर पंच गुरु

होते हैं। उनके गुणानुराग से उनकी सेवा, स्तुति, वन्दना, अर्चना, पूजा, संरक्षण, वैयावृत्ति आदि करना पंचगुरु भक्ति है।

(7) जीव दया–

''धर्मस्य मूलं दया'' अर्थात् धर्म का मूल दया होने से धर्मात्मा के लिये जीव दया करना सर्वोपरि है।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण।। (तुलसीदास)

मृत्यु दण्ड से लोग डरते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है, दूसरों को अपने जैसा ही मानकर मनुष्य किसी को मारने की प्रेरणा न करें।

सब्बे वसन्ति दण्डस्य सब्बे भयन्ति प्रच्चुनो।
उतानं उपमं कत्त्वा न हन्नेय्य घातये।। (बौद्ध धर्म, धम्मपद)

दण्ड से सभी लोग डरते हैं। मृत्यु से भी भय खाते हैं। दूसरों को अपने जैसा मानकर मनुष्य न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करें।

प्राणीघातात् यो धर्मिमिहिते मूढ मानसः।
स वा'छति सुधावृष्टिं कृष्णाघहि मुख्स कोटरात्।। (व्यास वाक्य)

प्राणी घात से मूढ़ यदि धर्म को चाहता है, वह मानों अत्यन्त भयंकर विषधर कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि को चाहता है अर्थात् जैसे कृष्ण सर्प के मुख्य से अमृत वृष्टि नहीं हो सकती है उसी प्रकार प्राणी घात से ध ार्म नहीं हो सकता है।

इसलिये अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं-

''अमृतत्त्व हेतु भूतं परममहिंसारसायनं लब्ध्वा'' (पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

अमृत तत्त्व के हेतुभूत अहिंसा परम रसायन है अर्थात् अहिंसा रूपी अमृत पान से जीव को शाश्वतिक अजरामर, अनन्त, सुख सम्पन्न मोक्ष मिलता है।

''अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरित्यागाः'' (पात'जलियोग द.)

अहिंसा मे स्थित होने पर उस अहिंसक महात्मा के सम्पक्र-सहवास, दर्शन, स्पर्शन से सब प्राणियों का द्वेष भाव नष्ट होता है।

अतः अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा जगदम्बा है, अहिंसा ही परम नीति है, अहिंसा ही परम दान है, अधिक क्या कहें अहिंसा ही अमृत है, अहिंसा ही परमात्मा स्वरूप है। इससे ही विश्वशांति, विश्वमैत्री, सह अस्तित्त्व, युद्ध में निःशस्त्रीकरण हो सकता है। अधिक क्या विश्व में युद्ध का नाम-निशान भी नहीं रह सकता है। अहिंसा के पूर्ण प्रसार से पुलिस, न्यायालय, मिलट्री आदि की आवश्यकता ही नहीं होगी। प्रत्येक स्थान में ध ार्म-राज्य, रामराज्य ही हो जायेगा इसलिये अहिंसा रूपी अमृत का सबको सेवन करना परम आवश्यक है।

(8) जन छानकर पीने का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण

असंख्य त्रय जीवं अगालित जले निवसन्ति नित्यम्।
तेन तत्पानेन हिंसा च भवति बहु रोगम्।।

अगलित (बिना छना पानी) पानी में असंख्यात त्रस जीव सतत वास करते हैं। इसलिये बिना छना पानी पीने से हिंसा होती है एवं अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः कहा है-

दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं वस्त्र पूतं जलं पिवेत्।
सत्य पूतं वदेत्त्वाचं मनः पूतं समाचरेत्।। (मनुस्मृति)

देख कर जीवों की रक्षा करते हुये चलना चाहिये। वस्त्र से पानी को छानकर पीना चाहिये। मन को पवित्र बनाकर आचरण करना चाहिये।

आधुनिक वैज्ञानिक लोगों ने सिद्ध किया है कि एक जल बिन्दु में 36450 कीटाणु रहते हैं। जैन विज्ञान के आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने अध यात्मिक दिव्य ज्ञान से प्राग् ऐतिहासिक काल से ''जल में त्रस जीवों का सद्भाव है'' यह स्पष्ट एवं प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित किया है। वैज्ञानिक यन्त्र में सीमित शक्ति होने के कारण एक निश्चित आकार के जीव दिखाई देते हैं किन्तु उससे सूक्ष्म जीव उस सूक्ष्मदर्शी यन्त्र में दिखाई नहीं देते हैं। इसलिये वैज्ञानिकों ने एक बिन्दु में 36450 जीवों को अभी तक पाया है। परन्तु सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, वीतराग-विज्ञान के ज्ञाता मनीषियों ने एक जल बिन्दु में जितने जीव स्पष्ट अवलोकन किया है उनकी संख्या वर्तमान संख्या की अपेक्षा कई अरबों, खरबों गुनी है। यह संख्या स्थावर जीवों की ही नहीं यह त्रस जीवों की है। स्थावर जीव भी उनमें अनेक है, इसलिये

अहिंसा एवं आरोग्य की दृष्टि से पानी छानकर भोजन में प्रयोग करना अत्यन्त अनिवार्य एवं विधेय भी है।

पानी छानने की विधि

पानी छानने के लिये सफेद, नवीन, मोटा कपड़ा प्रयोग में लाना चाहिये। कपड़ा यदि रंगीन होगा तो उस कलर-केमिकल (रंगीन रसायन) से जीवों को बाधा पहुँचेगी एवं घात भी होगा, इसलिये कपड़ा सफेद होना चाहिये। पहने हुये कपड़े का प्रयोग करने से गंदे होने से जीवों को बाधा पहुँचेगी एवं जल दूषित हो जायेगा। कपड़ा पतला होने से जीव छनकर कपड़े के ऊपर नहीं रहेंगे। जिस बर्तन में पानी छानना है उस बर्तन से कपड़ा तीन-चार गुना बर्तन के मुँह से बड़ा होना चाहिये जिससे कपड़े को दोहरा करके छानने में सुविधा होगी। कपड़ा इतना मोटा होना चाहिये, जिसको दोहराने के बाद सूर्य की किरणें उससे पार नहीं हो सके। जिस बर्तन में, जलाशय से पानी निकालना है एवं जिसमें पानी छानना है, इस प्रकार के दोनों बर्तन स्वच्छ होने चाहिये। जिस साधन से पानी निकलना है, वह साधन रस्सी आदि भी स्वच्छ होने चाहिये। कुआँ से पानी निकालने की बाल्टी आदि के नीचे भी रस्सी होनी चाहिये, जिससे छने हुये जीवों को सुरक्षित रूप से पानी में पहुँचाया जा सकें।

जलाशय से पानी निकालने के पश्चात् दूसरे स्वच्छ बर्तन के ऊपर उपरोक्त कपड़े (छनना, नातना) को डालकर पानी सावधानी से छानना चाहिये जिससे छना हुआ पानी नीचे न गिरे, जीवों का घात न हो, जल का अपव्यय नहीं होवे पानी छानने के बाद तत्क्षण ही छने हुये जीव सहित कपड़े को सावधानी से लेकर जिससे जीव नीचे न गिरे, दूसरे पात्र के ऊपर रखकर छने हुए पानी को उस कपड़े के ऊपर डालना चाहिये, छने हुये जीव उस पात्र में बाधा रहित पहुँच जायेंगे। उन जीवों को सावधानी पूर्वक पानी के पास पहुँचाकर रस्सी ऊपर खींच देना चाहिये, जिससे पात्र उल्टा होकर पानी सहित जीव, पानी में प्रवेश कर जायेंगे। छने हुये जीवों को कपड़े के ऊपर ज्यादा समय नहीं रखना चाहिये-क्योंकि ज्यादा समय रहने पर उपयुक्त जल एवं वातावरण के अभाव में जीव मरण को प्राप्त हो जायेंगे। ऊपर से भी जीवों को नहीं डालना चाहिये, क्योंकि ऊपर से गिरने से

प्रतिघात के कारण जीव मर जायेंगे। छने हुए जीवों को ऊपरी स्थान भाग में नहीं फेंकना चाहिये क्योंकि वे वहाँ पर जीवित नहीं रह सकते। जिस जलाशय से पानी निकाला गया है उसी जलाशय में उन जीवों को डालना चाहिये क्योंकि अन्य जलाशय का पानी का गुण, रासायनिक धर्म अलग होने के कारण उन जीवों को कष्ट पहँचेगा एवं घात भी हो सकता है।

वर्तमान में जलनलियों का प्रयोग ज्यादा हो रहा है, उससे ही जल लाते हैं, पानी छानने के लिये अधिकतर लोग नल में कपड़ा बांध देते हैं, और कपड़ा जब तक गलकर नष्ट नहीं होता है, जब तक बंधा रहता है, यहाँ तक नीचे कपड़ा गलकर फट जाने पर भी दूसरा नया कपड़ा प्रयोग में नहीं लाते हैं। नल से पानी छानने के पश्चात् नल में बंधे कपड़े को सावध ाानी से खोलकर छने हुये पानी से धोकर उस कपड़े को सुखा देना चाहिये। उन जीवों को जिस नाली में स्वच्छ पानी बह रहा है, वहाँ छोड़ देना चाहिये। वस्तुतः उनकी सम्पूर्ण सुरक्षा के लिये जहाँ से पानी नल में आ रहा है वहाँ ही छोड़ना चाहिये। परन्तु यह असम्भव नहीं होने पर भी प्रायः कष्ट साध्य होने से स्वच्छ बहती हुई नाली में छोड़ना अपवाद मार्ग है। वहाँ पर भी उनकी सुरक्षा होना प्रायः असम्भव है, क्योंकि नाली में दूषित पानी बहता रहता है, जिससे उन जीवों का घात होना प्रायः सम्भव है। इसलिये दयालु धर्मात्माओं को इस प्रकार के जलाशयों से पानी लाना चाहिये, जहाँ पर जीव सुरक्षित रूप से पहुँच सकते हैं।

छने पानी की मर्यादा

उपरोक्त विधि से पानी को छानने के बाद पानी की मर्यादा अर्थात् अवधि अन्तर्मुहुर्त अर्थात् 48 मिनिट के अन्दर-अन्दर है। इसी प्रकार त्रस जीव से रहित शुद्ध पानी का प्रयोग स्नान करने के लिये कपड़े धोने के लिये, पीने के लिये, भोजन तैयार करने के लिये, बर्तन-मांजने-धोने के लिये आदि समस्त कार्यो में प्रयोग करना चाहिये। वर्तमान में कुछ लोग पीने के लिये एन-केन-प्रकारेण सुबह छना हुआ पानी दिनभर अर्थात् शाम तक प्रयोग करते हैं। परन्तु स्नानादि कार्यो के लिये प्रायः अनछना पानी का ही प्रयोग करते हैं। स्नानादि में पानी का जो उपयोग होता है उसमें क्या जीवों का घात नहीं होता है? अवश्य होता है।

एक बार छानने के बाद गृहस्थ लोग 48 मिनिट के पहले-पहले तक उसको प्रयोग करते हैं, उसके पश्चात् प्रयोग करना है तो पुनः उपरोक्त रीति से ही छानकर पानी का उपयोग करना चाहिये। पानी की मर्यादा इससे अधिक बढ़ाना हो तो उसमें इलायची, लोंग पींसकर इतनी डालनी चाहिये जिससे पानी का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण बदल जाना चाहिये। इस प्रकार की विधि से प्रासुक किये पानी की मर्यादा 6 घण्टे है तथा थोड़ा गर्म करने पर भी पानी की मर्यादा 6 घण्टे होती है। इससे भी अधिक मर्यादा के लिये पानी को खूब उबाल लेना चाहिये, जिससे उस पानी की मर्यादा 24 घण्टे हो जाती है। 24 घंटों के बाद उस पानी को उबालकर या छानकर या उसी ही अवस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिये।

दूध, दही, घी, मक्खन की मर्यादा

प्रासुक पानी से थनों को धोकर, हाथ को पानी से धोकर, स्वच्छ बर्तन मे दूध निकालना चाहिये, उस दूध को अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के अन्दर-अन्दर छानकर गरम करना चाहिये। ठीक से अर्थात् उबाल आने पर उस दूध की मर्यादा 24 घण्टे हो जाती है। 24 घण्टे के पश्चात् या बिना गर्म किये दूध में तज्जातिय अर्थात् जैसे गाय के दूध मे गाय जातिज असंख्याज सूक्ष्म (बैक्टिरिया)जीव उत्पन्न होते है, इसलिये अशुद्ध दूध सेवन में हिंसा होती है एवं रोग का कारण बनता है।

उस शुद्ध दूध में शुद्ध चांदी, मारबल-पत्थर नारियल की नरेठी डालकर दही जमाना चाहिये। पहले का दही, मट्ठा डालकर तैयार किया हुआ दही भी अमर्यादित है। कच्चे दूध में दही डालकर तैयार किया गया दही भी अशुद्ध है। अमर्यादित दूध से ही दही बनाने से, अशुद्ध पात्र या जामन होने से उस दही में अनेक बैक्टिरिया उत्पन्न होते है, उस प्रकार का दही खाने योग्य नहीं है, परन्तु उपरोक्त शुद्ध दही में जीव नहीं होने से 24 घण्टे के पहले-पहले भोजन में प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार ही मथने से शुद्ध मट्ठा (दहीं) बनता है एवं शुद्ध मक्खन निकलता है। उस मक्खन को अर्न्तमुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के पहले घी बना लेना चाहिये, नहीं तो उस वर्ण के असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उससे पूर्व घी बना लेना चाहिये, नहीं तो उस वर्ण के असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उससे

जो घी बनता है वह भी अशुद्ध होता है। अन्तर्मुहूर्त के पहले मक्खन में जीव नहीं होने पर भी मक्खन कामोद्दीपक, इन्द्रिय उत्तेजक होने से खाने के लिये योग्य नहीं है। इसी प्रकार वह अष्ट मूलगुण प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिए, नैतिक उन्नति के लिये, धार्मिक जागृति के लिये अत्यन्त अनुकरणीय है।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-3)

1. श्रावक के अष्ट मूल गुण क्या-क्या है ?
2. मधु सेवन क्यों नहीं करना चाहिये?
3. रात्रिभोजन त्याग का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण बताओ?
4. हिन्दू धर्म में रात्रि भोजन के बार में क्या कहा है?
5. पंच उदुम्बर फल क्यों नहीं सेवन करना चाहिये?
6. पंच गुरु कौन-कौन हैं?
7. जीव दया पालन क्यों करना चाहिये?
8. जल छान कर पीने का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण बताओ?
9. पानी छानने की विधि बताओ।?
10. दूध, दही, घी, मक्खन की मर्यादा क्या है?

मंगल गीत

अरिहन्त जय-जय, सिद्ध प्रभु जय जय।
साधु जीवन जय-जय, जिन धर्म जय जय।।(1)।।
अरिहन्त मंगलम्, सिद्ध प्रभु मंगलम्।
साधु जीवन मंगलम्, जिन धर्म मंगलम्।।(2)।।
अरिहन्त उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम।
साधु जीवन उत्तम, जिन धर्म उत्तम।।(3)।।
अरिहन्त शरणा, सिद्ध प्रभु शरणा।
साधु जीवन शरणा, जिन धर्म शरणा।।(4)।।
ये ही चार शरणा, भव दुःख हरना।
अरिहन्त जय-जय, सिद्ध प्रभु जय जय।।(5)।।

चतुर्थ परिच्छेद
श्रावक के छः दैनिक कर्म

देव-पूजा गुरुपास्ति च स्वाध्याय संयम तप दानम्।
कर्त्तव्यः श्रावकाणां च उभय लोक हिताय।।

(1) देवपूजा, (2) गुरुओं की सेवा, (3) आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय, (4) प्राणी रक्षा एवं इन्द्रिय मन निग्रह, (5) तपश्चरण, (6) स्व-पर उपकार के लिये दान देना। यह उभय लोक के हित के लिये श्रावकों को दैनिक करने योग्य कर्त्तव्य हैं।

(1) देवपूजा

जो आध्यात्मिक महा पुरुष इन्द्रिय, मन, अन्तरंग शत्रु-क्रोध-मान-माया लोभादि को जीतते है ऐसे जिनेन्द्र देव, सर्वज्ञ एवं वीतराग होते हैं। उनके गुणानुराग से गुण स्मरण करना, प्रार्थना करना, पूजा (अर्चना), वन्दना आदि करना देव पूजा है। इससे मन प्रशम भाव को प्राप्त होता है जिससे मानसिक शक्ति मिलती है, पाप नष्ट होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है और परम्परा से स्वर्ग मोक्ष की उपलब्धि होती है।

(2) गुरु सेवा

धर्म की साक्षात् जीवन्त मूर्ति स्वरूप, अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थियों से विमुक्त, सांसारिक पापात्मक कार्य के जो त्यागी हैं वे गुरु हैं। उनकी सेवा, विनय आदि करना गुरु उपास्ति है। गुरु के बिना धर्म का यथार्थ प्रतिपादन संरक्षण, संवर्धन नहीं हो सकता है इसलिये गुरु बिना धर्म भी स्थिर नहीं रह सकता है। धर्म बिना सुख नहीं है इसलिये सुख के लिये गुरुओं की सेवा नित्य करना चाहिये।

गुरुसेवा का फल-

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्ते-सुन्दररूपं स्त्वनात्कीर्तिस्तपो निधिषु।।15।।
(श्रावकाचार-समन्तभद्राचार्य)

गुरूओं को प्रणाम करने से उत्तम गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों को प्राप्ति होती है, उपासना करने से स्वयं की पूजा

होती है, भक्ति करने से कामदेव सदृश्य लावण्य युक्त सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, स्त्वन करने से कीर्ति दशों दिशाओं में फैलती है।

कवि ने कहा है-

गुरु गोविन्द दोनो खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय।।
गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं तथा दैन्यं सर्व सज्जन संगमः।।

गंगा के स्नान से ताप नष्ट होता है, चन्द्र किरण से संताप नष्ट होता है, कल्पवृक्ष से दरिद्रता नष्ट होती है परन्तु सज्जन (गुरु) की संगति से पाप, ताप तथा दीनता सर्व एक साथ विलीनता को प्राप्त होते है।

गुरु भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।
त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः।।(मनुस्मृति)

यदि गुरु भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यन्त मूल्यवान् वस्तु मिल सकती है, जो क्या अन्य क्षुद्र कार्यो की सिद्धि नहीं हो सकती है?

जिस अमूल्य रत्न से त्रिलोक मिल सकता है उस रत्न से क्या सामान्य तुष नहीं मिल सकता है? अर्थात् निश्चय से मिल सकता है। इसलिये हिताकांक्षियों को सतत प्रयत्नशील होकर गुरुओं की सेवा करनी चाहिये।

एक कवि ने कहा भी है-

हरिसु जनसु हेत कर, कर हरिजन सु हेत।
माल मूलक हरि देत है, हरि जन हरि ही देत।।

भगवान् की सेवा करने से भगवान् धन सम्पत्ति दे सकते हैं, परन्तु गुरुओं की सेवा करने से गुरुजन, भगवान् को ही दे देंगे।

प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरु एक क्रान्तिकारी, सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्यों के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेग्जेंडर (सिकन्दर) महान् बना अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी,

छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास, महात्मा गाँधी बने श्रीमद् राजचन्द्र के कारण। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा, महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्ध विद्या, कला कौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभाः।

गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश्य है।

"गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अवगढ डोंगर घाट"

गुरु के बिना यथार्थ मार्गदर्शन कौन करेगा? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुःरूह, भयंकर जंगल घाट के समाने है। उस को पार करने के लिये गुरु रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

(3) स्वाध्याय

आत्म कल्याण के लिये विवेक ज्योति प्राप्त करने के लिये सद्गुरु के चरण सानिध्य में एवं उनके मार्गदर्शन में सत् साहित्यों का पठन करना स्वाध्याय है।

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव सः।।

अनेक संशय को छेद करने वाला, परोक्ष पदार्थ को दर्शाने वाला एवं सब के चक्षु स्वरूप शास्त्र है। जो शास्त्र अध्ययन नहीं करता है वह आँख वाला होते हुये भी अन्धे के सदृश्य है।

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुविरेयणंअमिद भूयं।
जरमरणवाहि हरणं खय करणं सव्व दुक्खाणं।।7।।
(अष्टपाहुड़, कुन्दकुन्दाचार्य)

जिनेन्द्र भगवान् की अमृतवाणी महान् औषधि है। इसके सेवन से काम, भोग, विषय रूपी विष की वांति (उल्टी) हो जाती है, यह अमृत तुल्य है। इस वचनामृत का पान करने से जन्म-मरण-व्याधि नष्ट हो जाती है और सम्पूर्ण दुःखों का विलय हो जाता है।

(4) संयम-

आत्मा की सुरक्षा के लिये, आत्म उन्नति के लिये दुष्ट इन्द्रिय एवं मन का सम्यक् निरोध करना संयम है।

(5) तप-

आकांक्षा का नियन्त्रण करना तप है। यह तप बाह्य एवं अन्तरंग के भेद से दो प्रकार का है। तप तपन(सूर्य) के समान समस्त अज्ञान, मोह, अविद्या अन्धकार को नाश करने वाला है।

(6) दान-

स्व-पर हित साधन के लिये चार प्रकार का दान देना चाहिये। दान के बिना दया नहीं है, दया के बिना धर्म नहीं है।

जो दान देता है वह दान देते हुये अन्तरंग में एक अलौलिक आनन्द का अनुभव करता है। दान से उनकी कीर्ति दश दिशाओं में फैल जाती है, पाप कर्म का नाश करता है, सातिशय पुण्य वृद्धि को प्राप्त होता है। उस पुण्य से इस लोक में ख्याति, पूजा, वैभव, प्राप्त होता है। परलोक में भोगभूमि, स्वर्ग, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती की विभूति मिलती है। दान के चार प्रकार है-(1) आहार दान, (2)औषधि दान, (3) ज्ञान दान, (4)वसतिका दान या अभय दान।

आहार दान

''शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्'' धर्म साधन के लिये शरीर सर्वश्रेष्ठ एवं प्रथम साधन है। योग्य शरीर से धर्म साधन विशेष होता है। आहार के बिना शरीर दुर्बल हो जाता है। शरीर रक्षा के लिये आहार चाहिये। आहार के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता है। क्षुधा एक भयंकर रोग है। क्षुधारूप रोग से सम्पूर्ण शरीर जलने लगता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, इन्द्रिय-मन एवं अवयव शिथिल पड़ जाते हैं, जिसके कारण धर्म साधन विशेष नहीं हो पाते हैं, इसलिये क्षुधारूपी रोग को दूर करने के लिये भोजन रूपी आहार की नितान्त आवश्यकता है। सर्व आरम्भ, परिग्रह त्यागी साधु केवल भिक्षा से प्राप्त अन्न से ही उदर पोषण करते हैं जिससे उनकी धर्म-साधना उत्तम

रीति से चलती रहे। इसलिये सद्-गृहस्थों का पवित्र श्रेष्ठ कर्त्तव्य है कि ऐसे धर्मात्मा साधु पुरुषों को शुद्ध आहार दान दें, उनकी रक्षा करें जिससे धर्म की भी रक्षा होगी। धर्म की रक्षा से विश्व में सुख शांति फैलेगी।

दानं दुर्गति नाशाय शीलं सद्गति कारणं।
तपः कर्म विनाशाय भावना भव नाशिनी।।

दान से दुर्गति नाश होती है, शील से सद्गति मिलती है, तप से कर्म नाश होता है, भावना से संसार नाश होता है।

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्य भूषणम्।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम्।।

हस्त का भूषण सोने का कड़ादि नहीं है परन्तु दूसरों को दान देना ही भूषण है। कंठ का भूषण रत्नादि हार नहीं है परन्तु सत्य बोलना भूषण है। कान का भूषण कुंडलादि नहीं है परन्तु साधुओं का आत्म उद्धारक उपदेश सुनना भूषण है। इसी प्रकार जो भूषण से अलकृंत है उसको भौतिक भार स्वरूप भूषण से क्या प्रयोजन है?

गजतुरंगसहस्र गोकुलं भूमि दानम्।
कनकरजतपात्रं मेदीनी सागरान्तं।।
सुरयुवती समानं कोटि कन्या प्रदानम्।।
नहीं भवति समानं ह्यन्नदानं प्रधानं।।

हजारों हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, स्वर्ण-पात्र, रजत-पात्र, सागर पर्यंत पृथ्वी, अप्सरा के समान सुन्दरी कोटि कन्या प्रदान करना भी अन्न दान के समान नहीं है। अन्न दान प्रधान दान है क्योंकि भोजन से क्षुधा रोग मिटता है जिससे निराकुल रूप से धर्म साधना होती है, जिससे शाश्वतिक सुख मिलता है, शान्ति मिलती है।

सत्पात्र दानेन भवेद्धनाढ्यो धनप्रकर्षेण करोति पुण्यम्।
पुण्याधिकारी दिवि देवराजः पुनर्धनाढ्यः पुनरेव त्यागी।।

सत् पात्र दान से पुण्य संचय होता है पुण्य के प्रभाव से धनी बनता है, धन बढ़ने से पुनः दानादि करके पुण्य कार्य करता है जिससे सातिशय पुण्य होता है जिससे स्वर्ग में देवराज इन्द्र बनता है। स्वर्ग से च्युत होकर पुनः वैभवशाली धर्मात्मा मनुष्य बनता है। यहाँ पर पुनः त्याग करता है।

दिण्णई सुपत्तदाणं विसेसदो होइ भोगसग्गमही।
णिव्वाण सुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।16।।(रयणसार)

उत्तम साधु पुरुष को दान देने से नियम से भोग एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा क्रम से निर्वाण सुख भी मिलता है ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान् ने दिव्य संदेश दिया है।

जो मुणि भुत्तवसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणुवदिट्ठं।
संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाणवर सोक्खं।।22।।(रयणसार)

जो मुनीश्वरों का आहार दान देने के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझकर सेवन करता है वह संसार के सारभूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अतिथियों को पहले आहार दान देकर उसके पश्चात् ही सद्गृहस्थ भोजन करता है। गाँव में साधु नहीं होने पर भी आहार के समय में द्वारप्रेक्षण करना चाहिये अर्थात् साधु कहीं से आ रहे हैं या नहीं इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि आ रहे हैं तो उनका स्वागत करके भोजन देना चाहिये।

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तानाम्।
अतिथिनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि।।14।।(रत्नकरण्ड)

गृहस्थ के गृह सम्बन्धी आरम्भ, कृषि, व्यापार, भोजनादि बनाने से जो पापरूपी कलंक लिप्त होता है उस कलंक को धोने के लिये गृह त्यागी अतिथि मुनियों को आदर पूर्वक दान देने से वे कर्म धुल जाते हैं जैसे रक्त से लिप्त कपड़ा पानी से धोने से स्वच्छ हो जाता है।

न वे कदरिया देव लोकं वृजन्ति, बालाह वे न पसंसन्ति दानम्।
धीरोय दानं अनुमोद मानो, तेनेव सो होति सुखी परत्थ।(धम्मपद. बौद्ध.)

कंजूस आदमी देव लोक में नहीं जाते, मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते, पंडित लोग दान का अनुमोदन करते हैं, दान से ही मनुष्य लोक परलोक में सुखी होते हैं।

औषधि दान-

रोगिभ्यो भेषजं देयं, रोगो देह विनाशकः।
देहे नाशे कुतो ज्ञानं, ज्ञानाभावे न निर्वृत्तिः।।

रोगियों को औषधि देना चाहिये, क्योंकि रोग शरीर का नाशक है। शरीर का नाश होने पर ज्ञान कैसे हो सकता हे और ज्ञान के बिना निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकता है? इसलिये जो औषधि दान देता है, वह शरीर को बचाता है, तथा ज्ञान एवं निर्वाण प्राप्ति के लिये सहकारी कारण बनता है।

गुरुओं को, धार्मिक जनों को, रोगियों को, अहिंसात्मक प्रासुक शुद्ध औषधि देना औषधि दान है तथा शुद्ध औषधालय खोलना, रोगियों की सेवा, चिकित्सा करना, उनको सान्त्वना देना, प्रिय वचन बोलना, साहस दिलवाना आदि औषधि दान में आता है।

ज्ञान दान-

यो ज्ञान दानं कुरूते मुनीनां सदेवलोकस्य सुखानि भुक्ते।
राज्य च सत्केवलबोधलब्धि लब्ध्वा स्वयं मुक्तिपदं लभेत्।।

जो मुनियों के लिये ज्ञान दान करता है वह स्वयं स्वर्ग लोक से सुख भोगकर राज्य को प्राप्त करता है और केवलज्ञान को प्राप्त कर स्वयं मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

मुनियों को शास्त्र, ज्ञान उपकरण जैसे-कागज, कलम आदि देना ज्ञान दान कहा जाता है। सत्साहित्यों का प्रकाशन-वितरण करना भी ज्ञान दान है। स्वयं दूसरों का पढ़ाना, धार्मिक उपदेश करना, धार्मिक शिविर खोलना, धार्मिक स्कूल खोलना, उसके लिये आर्थिक सहयोग देना भी ज्ञान दान है।

अभय दान व वसतिका दान-

प्रत्येक जीव की रक्षा करना, गुरुओं का उपसर्ग, परीषह दूर करना, योग्य वसतिका (निवास गृह) पिच्छी-कमण्डलादि उपकरण देना अभयदान, वसतिका दान में गर्भित है।

जीव की रक्षा करना, उनको किसी प्रकार के कष्ट नहीं पहुँचाना बहुत बड़ा दान है क्योंकि उससे जीवन की रक्षा हुई, जीवन रक्षा से वह अन्य धार्मिक कार्य कर सकता है।

दाणु ण दिण्णउ मुणि वरउँ ण वि पुज्जिउ जिणणाहु।
पंच ण वंदिय परम गुरु किमु होसइ सिव लाहु।।

जो मुनीश्वरों को दान नहीं देता है, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा नहीं करता है, पंच परमेष्ठियों की वन्दना नहीं करता है, उसको शिव सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

दान का फल-

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्व्याधि भेषजाद्भवेत्।।

ज्ञान दान से दानी ज्ञानवान् बनता है, अभयदान देने से दानी निर्भय बनता है, अन्न दान से दानी नित्य सुखी रहता है, औषधि दान से दानी निरोग शरीर को धारण करता है।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-4)

1. श्रावक के छः दैनिक कर्त्तव्य क्या-क्या है ?
2. देव पूजा का स्वरूप बताओ?
3. गुरु सेवा का स्वरूप एवं फल बताओ?
4. स्वाध्याय का स्वरूप एवं फल बताओ?
5. संयम किसे कहते हैं?
6. तप किसे कहते हैं?
7. दान का स्वरूप एवं फल बताओ?
8. आहार दान का स्वरूप एवं फल बताओ?
9. औषध दान का स्वरूप एवं फल क्या है?
10. ज्ञान दान का स्वरूप एवं फल क्या है?
11. अभय दान किसे कहते है? इससे क्या लाभ हैं?

जन्ममृत्युमहाम्भोधेः पारं गच्छन्ति ते जनाः।
पावनौ शरणं येषां योगीन्द्रचरणौ ध्रुवम्।।

जन्म मरण के समुद्र को वे ही पार कर सकते हैं जो प्रभु के चरणों की शरण में आ जाते हैं। दूसरे लोग उसे तर ही नहीं सकते।

पंचम परिच्छेद

14 जीव समास

(संज्ञी, असंज्ञी, बादर सूक्ष्मादि भेद)

समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य।।(12)
समनस्काः अमनस्काः श्रेयाः पंचेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे।
बादर सूक्ष्मेकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतरे च।।

{Jivas} possessing fine senses are known [to be divided into, those havind mind and those without mind. All the rest are without mind. [Jivas] having one sense [are divided into two classes] Badara and Suksma. All [of those have again to varieties each] Paryapta and its opposite.

पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी ऐसे दो प्रकार के जानने चाहिए और दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय से ये सब मन रहित असंज्ञी हैं, एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म दो प्रकार के हैं और ये पूर्वोक्त सातों पर्याप्त तथा अपर्याप्त हैं, ऐसे 14 जीव समास है।

''नानाविकल्प जालरूपं मनो'' अर्थात् नाना प्रकार के विकल्प रूप को मन कहते हैं। ऐसे मन वाले जीवों को समनस्क कहते हैं। मन से रहित जीव को अमनस्क कहते हैं। भले एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक अमनस्क ही हैं तथापि यहाँ पर समनस्क और अमनस्क भेद पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से कहा गया है। इसका कारण यह है कि इन्द्रिय एवं मन की उपलब्धि क्रम से होती है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीव में क्रमशः एक-एक इन्द्रिय वृद्धि रूप से स्पर्शन, रसना, घ्राण एवं चक्षु इन्द्रिय होती है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय में स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय होगी परन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव में पाँचों इन्द्रिय के साथ-साथ मन भी होता है। इसलिए पंचेन्द्रिय में ही संज्ञी एवं असंज्ञी का भेद है।

संज्ञी की परिभाषा आचार्य उमास्वामी ने भी तत्त्वार्थसूत्र में निम्न प्रकार से दी है। यथा-

संज्ञिनः समनस्काः। (24)

The retional(beings are also called)

संज्ञी– i.e. one who has got sanjna-mind here .

मनवाले जीव संज्ञी होते हैं।

एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव में से पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव अधिक विकसित जीव हैं क्योंकि संज्ञी जीव मन सहित होता है। मन दो प्रकार के हैं-

1. द्रव्यमन, 2. भावमन

पुद्‌गलविपाकी आंगोपांग नाम कर्म के उदय से द्रव्यमन होता है तथा वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाले आत्मा की विशुद्धि को भाव मन कहते हैं। यह मन जिन जीवों के पाया जाता है वे समनस्क हैं और उन्हें ही संज्ञी कहते हैं। परिशेष न्याय से यह सिद्ध हुआ कि इनके अतिरिक्त और जितने जीव होते हैं वे असंज्ञी है। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोम्मटसार में संज्ञा मार्गणा में इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

णोइंदियआवरण खओवसमं तज्जबोहणंसण्णा।
स जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदिअवबोहो।।

नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा करते हैं। यह संज्ञा जिस को हो उसको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह संज्ञा न हो किन्तु यथा सम्भव इन्द्रियजन्य ज्ञान हो उनको असंज्ञी कहते हैं।

संज्ञी असंज्ञी की पहचान के लिए चिह्नः–

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण।
जी जीवों सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी दु।।661।।

हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जाए उसको ''शिक्षा'' कहते हैं। इच्छापूर्वक हाथ, पैर के चलाने को ''क्रिया'' कहते हैं। वचन अथवा चाबुक आदि के द्वारा बताये हुए कर्त्तव्य को ''उपदेश'' कहते हैं और श्लोक आदि के पाठ को आलाप कहते हैं।

जो जीव इन शिक्षादि को मन के अवलम्बन से ग्रहण-धारण करता है उसको संज्ञी कहते हैं और जिन जीवों में यह लक्षण घटित न हो उसको असंज्ञी कहते हैं।

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरिदो।।

जो जीव प्रवृत्ति करने से पहले अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार करे तथा तत्त्व और अतत्त्व का स्वरूप समझ सके और जो नाम रखा गया हो उस नाम के द्वारा बुलाने पर आ सके, उन्मुख हो या उत्तर दे सके उसको समनस्क या संज्ञी जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत है उसको अमनस्क या असंज्ञी कहते हैं।

संज्ञीमार्गणागत जीवों की संख्या :-

देवेहिं सदिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं।
तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं।। गोम्मट्टसार पृ. 245

देवों के प्रमाण से कुछ अधिक संज्ञी जीवों का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे उतना ही समस्त असंज्ञी जीवों का प्रमाण है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार हृदय कमल में आठ पाँखुड़ी के आकार का द्रव्यमन होता है और उस द्रव्यमन से शिक्षा, उपदेश, वचनादि का ग्राहक 'भाव मन' होता है। वैसे तो एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक में भी कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान तथा आहार, निन्द्रा, भय, मैथुन आदि संज्ञाएँ होने के कारण उनमें भी कुछ क्रिया एवं प्रतिक्रिया होती है तथा वे भी सुख-दुःख अनुभव करते हैं तथापि जिस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उपदेश को ग्रहण करता है, शिक्षा को प्राप्त करता है, मनन करता है, चिन्तन करता है, सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकता है, संयम को धारण कर सकता है, मोक्ष को प्राप्त कर सकता है उसी तरह अन्य जीव नहीं कर सकते हैं।

इस गाथा में चौदह जीवसमास का भी वर्णन किया गया है।यथा-

1. बादर एकेन्द्रिय 2. सूक्ष्म एकेन्द्रिय 3. द्वीन्द्रिय 4. त्रीन्द्रिय 5. चतुरिन्द्रिय 6. असंज्ञी पंचेन्द्रिय 7. संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन 7 के पर्याप्त एवं अपर्याप्त भेद हो हैं। इस कारण 7ग2त्र14 जीवसमास हो जाते है।

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा मन ये षट् पर्याप्ति हैं, इनमें से जो एकेन्द्रिय जीव हैं उनको तो केवल आहार, शरीर, एक स्पर्श इन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती है। संज्ञी पंचेन्द्रियों के चार ये पूर्वोक्त और भाषा तथा मन ये छहों पर्याप्तियाँ होती हैं और शेष जीवों के मन रहित पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। पर्याप्त अवस्था में संज्ञी पंचेन्द्रियों के 10 प्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रियों के मन के बिना 9 प्राण, चौइंद्रियों के मन और कर्ण के बिना 8 प्राण, तेइंद्रियों के मन, कर्ण और चक्षु के बिना 7 प्राण, दोइन्द्रियों के मन, कर्ण, चक्षु और घ्राण के बिना 4 प्राण होते हैं। अपर्याप्त अवस्था के धारक जीवों में संज्ञी तथा असंज्ञी इन दोनों पंचेन्द्रियों के श्वासोच्छ्वास वचन बल और मनोबल के बिना 7 प्राण होते हैं और चौइन्द्रिय आदि एकेन्द्रिय पर्यन्त शेष जीवों के क्रमानुसार एक एक प्राण घटता हुआ है।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद–5)

1. पंचेन्द्रिय के भेद नाम सहित बताओ?
2. मन के बारे में वर्णन करो?
3. संज्ञी की क्या विशेषताएँ हैं?
4. 14 जीव समास के नाम बताओ?
5. कौन से जीव की कितनी-कितनी प्रर्याप्तियाँ होती है?

वह नम्रता यथार्थ नम्रता नहीं है जिसमें अन्याय, असत्य के सामने घुटने टिका दिये जायें, परन्तु वह नम्रता यथार्थ नम्रता है जो सत्य, न्याय और उसके धारक को हृदय से स्वीकार किया जाय।

वचन अंतरंग भावों का वाचक है। दुर्वचन बोलकर अपना अंतरंग दुराचार को प्रकट करके अपनी दुर्गति को निमंत्रण मत दो।

–––आ. श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

षष्टम परिच्छेद

14 मार्गणा

(जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप)

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।।13।।
मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात्।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात्।। (द्रव्य संग्रह)

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to Margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणास्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही हैं।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध है ही परन्तु संसारी जीव भी शुद्ध हैं क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादित विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त हैं। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत है और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिये एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है।(1)मार्गणा स्थान (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अन्तर्भेद हो जाते हैं और उस अन्तर्भेद में भी अनेक प्रभेद होते हैं। इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं। उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।

1. मार्गणा-

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंजे जहा तहा दिट्ठा।
ताओ चोद्दस जाणे सुण्णाणे मग्गणा होंति।।

(141) गोम्मट सार जीवकाण्ड

जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिस पर्यायों में खोजे जाते हैं-अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मर्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी है।

चौदह मार्गणाओं के नाम-

गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे च।
संजमदंसणलेस्सा भवियासम्मत्तसण्णिआहारे।।42।।

1. गति मार्गणा 2.इन्द्रिय मार्गणा 3. काय मार्गणा 4. योग मार्गणा 5. वेद मार्गणा 6. कषाय मार्गणा 7. ज्ञान मार्गणा 8. संयम मार्गणा 9. दर्शन मार्गणा 10. लेश्या मार्गणा 11. भव्य मार्गणा 12. सम्यक्त्व मार्गणा 13. संज्ञी मार्गणा 14. आहार मार्गणा

1. गति मार्गणा

गइउदपज्जाया चउगइगमणस्स हेउ वा हु गई।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइत्तिय हवे चदुधा।।46।।

गति कर्मोदय जनित पर्याय ''गति'' है अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। वे गतियाँ चार है-1. नरक गति 2. तिर्यच गति 3. मनुष्य गति 4. देव गति।

2. इन्द्रिय मार्गणा

अहमिंदा जह देव, अविसेसं अहमहं मि मण्णंता।
इसंति एक्कमेक्कं, इंदा इव इंदिये जाण।।164।।

जिस प्रकार अहमिन्द्र देव बिना किसी विशेषता के ''मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ'' इस प्रकार मानते हुए प्रत्येक स्वयं को स्वामी मानता है, उसी प्रकार इन्द्रियों को जानना चाहियें।

फासरसगंधरूवे, सद्दे णाणे च चिण्हयं जेसिं।
इगिबितिचदुपंचिंदिय जीवाणियभेयाभिण्णाओ।।166।।

एइंदियस्य फुसणं, एक्कं वि य होदि सेसजीवाणं।
होंति कमउड्ढियाइं जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं।।167।।

स्पर्श-रस-गंध-रूप और शब्द का ज्ञान जिनका चिह्न है, ऐसे एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय- चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव हैं और वे अपने-अपने भेदों सहित हैं। एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन-इन्द्रिय ही होती है, शेष जीवों के क्रम से जिव्हा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र बढ़ जाते हैं।

3. काय मार्गणा

जाईअविणाभावी, तसथावरउदयजो हवे काओ।
सो जिणमदम्हि भणिओ, पुढवीकायादिछब्भेयो।।181।।

जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को जिनमत में काय कहते हैं। इसके छह भेद हैं-

1. पृथिवी 2. जल 3. अग्नि 4. वायु 5. वनस्पति 6. त्रस

4. योग मार्गणा

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स।
जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो।।216।।

पुद्‌ल विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन वचन काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसको योग कहते है।

5. वेद मार्गणा

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।
णामोदयेण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा।।271।।

पुरुष स्त्री और नपुंसक वेदकर्म के उदय से भाव पुरुष, भाव स्त्री, भाव नपुंसक होता है और नामकर्म के उदय से द्रव्य पुरुष द्रव्य स्त्री, द्रव्य

नपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है, परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होता है।

6. कषाय मार्गणा

सुहदुक्खसुबहुसस्सं, कम्मक्खेतं कसेदि जीवस्स।
संसारदूरमेरं, तेण कसाओ त्ति णं बेंति।।282।।

जीव के सुख-दुःख आदि रूप अनेक प्रकार के धान्य को उत्पन्न करने वाले तथा जिसकी संसार रूप मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र, खेत का यह कर्षण करता है, इसलिये इसको कषाय कहते हैं।

सम्मत्तदेससयलचारित्त जहक्खादचरणपरिणामे।
घादंति वा कसाया, चउसोल असंखलोगमिदा।।283।।

सम्यक्त्व देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यात चारित्ररूपी परिणामों को जो कषे-घाते, न होने दे उसको कषाय कहते हैं। इसके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन इस प्रकार चार भेद होते हैं। अनन्तानुबन्धी आदि चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह चार-चार भेद होने से कषाय के उत्तर भेद सोलह होते हैं। किन्तु कषाय के उदय स्थानों की अपेक्षा से असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। जो सम्यक्त्व को रोके उसको अनन्तानुबन्धी, जो देशचारित्र को रोके उसको अप्रत्याख्यानावरण, जो सकल चारित्र को रोके उसको प्रत्याख्यानावरण, जो यथाख्यातचारित्र को रोके उसको संज्वलन कषाय कहते हैं।

7. ज्ञान मार्गणा

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे।
पच्चक्खं च परोक्खं, अणेण णाणं ति णं बेंति।।299।।

जिसके द्वारा जीव त्रिकालविषयकभूत, भविष्यत्, वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष।

8. संयम मार्गणा

वदसमिदिकसायाणं, दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं।
धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणिओ।।465।।

अहिंसा, अचौर्य, सत्य, शील, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालन, क्रोधादि चार प्रकार की कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग तथा पाँच इन्द्रियों का जय, इसको संयम कहते हैं। अतएव संयम के पाँच भेद हैं।

9. दर्शन मार्गणा

जं सामण्णं गहणं, भवणं णेव कट्टूमायारं।
अविसेसदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णदे समये।।482।।

सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके केवल सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है, उसको परमागम में दर्शन कहते हैं।

भावाणं सामण्ण-विसेसयाणं सरूवमेत्तं जं।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि।।482।।

सामान्य विशेषात्मक पदार्थो की स्वरूपमात्र स्व-परसत्ता का निर्विकल्प रूप से जीव के द्वारा जो अवभासन होता है उसको दर्शन कहते हैं।

पदार्थो में सामान्य विशेष दोनों ही धर्म रहते हैं: किन्तु इनके केवल स्वरूप मात्र की अपेक्षा से जो स्व-परसत्ता का अभेदरूप निर्विकल्प अवभासन होता है, उसको दर्शन कहते है अतएव वह निराकार है और इसलिए इसका शब्दों के द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। इसके चार भेद हैं-चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन।

10. लेश्या मार्गणा

लिंपई अप्पीकीरइ, एदीए णिअपुणपुण्णं च।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा।।489।।

लेश्या के गुण को-स्वरूप को जानने वाले गणधरादि देवों ने लेश्या का स्वरूप ऐसा कहा है कि जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे, पुण्य और पाप के अधीन करें उसको लेश्या कहते हैं।

हिण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य।
लेस्साणं णिद्देसा, छच्चेव हवंति णियमेण।।493।।

लेश्याओं के नियम से ये छह ही निर्देश-संज्ञाएँ हैं-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, (पीतलेश्या) पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

11. भव्य मार्गणा

भविया सिद्धी जेसिं, जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा।।
तव्विवरीयाघ्भव्वा, संसारादो ण सिज्झंति।।557।।

जिन जीवों की अनंत चतुष्टयरूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हो उनको भवसिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो उन जीवों को अभव्य सिद्ध कहते हैं।

12. सम्यक्त्व मार्गणा

छप्पंचणवविहाणं, अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य, सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।561।।

छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नव पदार्थ इनका जिनेन्द्र देव ने जिस प्रकार से वर्णन किया है उस ही प्रकार से इनका जो श्रद्धान करना उसको सम्यक्त्व कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है-एक तो केवल आज्ञा से दूसरा अधिगम से।

13. संज्ञि मार्गणा

णोइंदिय आवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा।
स जस्स सो दु सण्णी, इदरो सेसिंदिअवबोहो।।660।।

नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा कहते हैं यह संज्ञा जिसके हो उसको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह संज्ञा न हो, किन्तु यथा संभव इन्द्रियजन्य ज्ञान हो उनको असंज्ञी कहते हैं।

14. आहार मार्गणा

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम।।664।।

शरीरनामक नामकर्म के उदय से देह-औदारिक, वैक्रियक आहारक, इनमें से यथासंभव किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्य मनरूप बनने के योग्य नोकर्मवर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-6)

1. मार्गणाओं के नाम बताओ?
2. मार्गणायें शुद्धजीव की या अशुद्ध जीव की होती है?
3. शुद्धजीव की मार्गणायें क्यों नहीं होती है?
4. आप में कौन-कौन सी मार्गणायें हैं? उसके नाम बताओ।?
5. सम्यग्दृष्टि जीव में कौन-कौन सी मार्गणायें होती हैं?
6. मिथ्यादृष्टि जीव में कौन-कौन सी मार्गणायें होती हैं?

सप्तम परिच्छेद

14 गुणस्थान

(गुणस्थान का सामान्य लक्षण)

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं।।8।।

दर्शनमोहनीय आदि कर्मो के उदय, उपशम, क्षय-क्षयोपमशम आदि अवस्था के होने पर होने वाले जिन परिणामों से युक्त जो जीव देखे जाते हैं उन जीवों को सर्वज्ञ देव ने उसी गुणस्थानवाला और उन परिणामों को गुणस्थान कहा है।

गुणस्थानों के चौदह भेद

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदोय।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहमो य।।9।।
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगिय।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा।।10।।

1. मिथ्यात्त्व, 2. सासादन, 3. मिश्र, 4. अविरत सम्यग्दृष्टि, 5. देशवरित, 6. प्रमत्ताविरत, 7. अप्रमत्ताविरत, 8. अपूर्वकरण, 9. अनिवृतिकरण, 10. सुक्ष्मसाम्पराय, 11. उपशान्त मोह, 12. क्षीण मोह 13. सयोगकेवलिजिन और 14. अयोगकेवलीजिन ये चौदह जीव समास/गुणस्थान हैं और सिद्ध इन जीव समासों-गुणास्थानों से रहित हैं।

1. मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च-अत्थाणं।
एयंते विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं।।15।।

मिथ्यात्त्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्त्व कहते हैं। इसके पाँच भेद है-एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञान।

2. दूसरे सासादन गुणस्थान का स्वरूप

आदिमसम्मत्तद्धा, समयादो छावलित्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मो त्ति सासणक्खो सो।।19।।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अथवा यहाँ पर 'वा' शब्द का ग्रहण किया है,

इसलिये द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे उतने काल में अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्त्व श्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको सासन या सासादन गुणस्थान कहते हैं।

3. तृतीय गुणस्थान का लक्षण

सम्मामिच्छुदयेण य, जत्तंतकरसव्वघादिकज्जेण।
ण य सम्मं मिच्छं पि य, सम्मिस्सो होदि परिणामो।।21।।

जिसका प्रतिपक्षी आत्मा के गुण को सर्वथा घातने का कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियों से विलक्षण जाति का है उस जात्यन्तर सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्त्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्त्वरूप परिणाम न होकर जो मिश्ररूप परिणाम होता है, उसको तीसरा मिश्रगुणस्थान कहते हैं।

4. अविरति सम्यग्दृष्टि-(जैनी गृहस्थ)

णो इंदियेसु विरदो, णो जीव थावरे तसे वापि।
जे सद्दहदि जिणुत्तं, सम्माइट्ठी अविरदो सो।।29।।

जे इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं है, किन्तु जिनेन्द्र देव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

5. देशविरत (जैनी श्रावक)

जो तसवहाउ विरदो, अविरदो तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्हि जीवो, विरयाविरदो जिणेक्कमई।।31।।

जे जीव जिनेन्द्र देव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ त्रस की हिंसा से विरत और उस ही समय में स्थावर ही हिंसा से अविरत होता है, उस जीव को विरताविरत कहते है।

6. प्रमत्त गुणस्थान (मुनि)

वत्तावत्तपमादे, जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो।।33।।

जो महाव्रती सम्पूर्ण 28 मूलगुण और शील भेदों से युक्त होता हुआ भी व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के प्रमादों को करता है, वह प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाला है। अतएव वह चित्रल (विभिन्न प्रकार) आवरणवाला माना गया है।

7. सप्तम गुणस्थान का स्वरूप (ध्यानस्थ मुनि)

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि।
अपमत्तगुणो तेण य, अपमत्तो संजदो होदि।।45।।

जब संज्वलन और नो कषाय का मन्द उदय होता है तब सकल संयम से युक्त मुनि के प्रमाद का अभाव हो जाता है। इसलिए इस गुणस्थान को अप्रमत्त संयत कहते हैं। इसके दो भेद है-एक स्वस्थानाप्रमत्त दूसरा सातिशयाप्रमत्त।

8. अपूर्वकरण गुणस्थान–(इस गुणस्थान से श्रेणी आरोहण)

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तं।
पडिसमयं सुज्झंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ।।50।।

जिसका अन्तर्मूहूर्तमात्र काल है, ऐसे अध: प्रवृत्त करण को बिताकर वह सातिशय अप्रमत्त जब प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि के लिए हुए अपूर्वकरण जाति के परिणामों को करता है, तब उसको अपूर्वकरण नामक अष्टमगुणस्थानवर्ती कहते हैं।

9. नवमें गुणस्थान का स्वरूप

एक्कम्हि कालसमये, संठाणादीहि जी णिवंट्टति।
ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं।।56।।
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्क परिणामा।
विमलयर झाणहुयवहिसहाहिं णिद्दड्ढ कम्मवणा।।57।।

अन्तर्मुहूर्त मात्र अनिवृत्तिकरण के काल में से आदि या मध्य अन्त के एक समयवर्ती अनेक जीवों में जिस प्रकार शरीर की अवगाहना आदि बाह्य कारणों से तथा ज्ञानावरणादिक कर्म के क्षयोपशमादि अन्तरंग कारणों से परस्पर में भेद पाया जाता है, उसी प्रकार जिन परिणामों के निमित्त से परस्पर में भेद नहीं पाया जाता; उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का जितना काल है, उतने ही उसके परिणाम हैं। इसलिए उसके काल के प्रत्येक समय में अनिवृत्तिकरण का एक-एक ही परिणाम

होता है तथा ये परिणाम अत्यन्त निर्मल ध्यानरूप अग्नि की शिखाओं की सहायता से कर्मवन को भस्म कर देता है।

10. दशवें गुणस्थान का स्वरूप

धुदकोसुंभयवत्थं, होहि जहा सुहमरायसंजत्तं।
एवं सुहमकसाओ, सहमसरागोत्ति णादव्वो।।59।।

जिस प्रकार धुले हुये कसूमी वस्त्र में लालिका-सुर्खी-सूक्ष्म रह जाती है, उसी प्रकार जो जीव अत्यन्त सूक्ष्म राग-लोभ कषाय से युक्त है उसको सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

11. उपशान्त कषाय

कदक फलजुदजलंवा, सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि।।61।।

निर्मली फल से युक्त जल की तरह अथवा शरद् ऋतु में ऊपर से स्वच्छ हो जाने वाले सरोवर के जल की तरह सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणामों को उपशान्त कषाय ग्यारहवाँ गुणस्थान कहते हैं।

12. बारहवें गुणस्थान का स्वरूप

णिस्सेसखीण मोहो, फलिहामलभयणुदयसमचित्तो।
खण कषाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं।।62।।

जिस निग्रन्थ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीण कषाय नाम का बारहवाँ गुणस्थानवर्ती कहा है।

13. तेरहवें गुणस्थान का वर्णन (सयोग केवली)

केवलणाण दिवायर किरण कलावप्पणासिअण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्प ववएसो।।63।।
अहसायणाण दंसणसहियो इदि केवली हु जोगेण।
जूत्तो त्ति सजोगि जिणो, अणाइणिहणारिसे उत्तो।।64।।

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह से (उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण) अज्ञान अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवललब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रियाँ, अलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाति कर्मो से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा है।

14. चौदहवें अयोग केवली गुणस्थान का वर्णन

सीलेसिं संपत्तोणिरूद्धणिस्सेस आसओ जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि।।65।।

जो अठाहर हजार शील के भेदों के स्वामी हो चुके हैं और जिसके कर्मो के आने का द्वाररूप आस्रव सर्वथा बन्द हो गया है तथा सत्त्व और उदय रूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख है, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं।

उपर्युक्त जो मार्गणा एवं गुणस्थान का वर्णन किया गया है इसमें सम्पूर्ण संसारी जीवों का कथन है तथापि दोनों में कुछ सूक्ष्म भेद हैं वह भेद यह है कि मार्गणा स्थान में तो विशेषतः बाह्य गति, शरीर, इन्द्रिय आदि को माध्यम करके प्ररूपणा की गई है तो गुणस्थान में अन्तरंग भावों को प्रधानता दी गई है।

''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' यह सिद्धांत बहुत ही व्यापक एवं रहस्यपूर्ण है। इस सिद्धांत से सिद्ध होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से कोई भी जीव न छोटा है और न बड़ा है। भले बाह्य शरीर, गति, इन्द्रिय आदि से या गुणस्थान की अपेक्षा छोटे-बड़े हो सकते हैं। विशेष जिज्ञासु को प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार आदि का अवलोकन करना चाहिये। यह जैन धर्म का सार्वभौम/ साम्यभाव/ समताभाव / समान अधिकारी सिद्धांत है। इस सिद्धांत से ही राजनीति में समाजवाद, लोकतंत्र, साम्यवाद की सही स्थापना हो सकती है। इसी से ही विश्व मैंत्री, विश्वप्रेम, विश्वसमाज,

विशवबन्धुत्त्व, निरस्त्रीकरण (अस्त्ररहित राष्ट्र निर्माण) विश्वशांति आदि महान् उदात्त भावना की सम्पूर्ति हो सकती है। सिद्धांतः शुद्ध निश्चय नय से संसारी जीव भी अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, सम्पन्न सिद्ध भगवान् के समान होते हुए भी व्यवहारतः अशुद्धनय से संसारी जीव सिद्ध स्वरूप नहीं है। क्योंकि संसारी जीव कर्म परतंत्रता के कारण संसार अवस्था में अनंत शारीरिक, मानसिक दुःखों को भोगता रहता है। यदि व्यवहार नय से भी शुद्ध मानेंगे तो अनुभव रूप में उपलब्ध रूप जो दुःख है एवं कर्म परतंत्रता है उसका अभाव होने का प्रसंग आयेगा परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है और एक अनर्थ यह हो जायेगा कि संसारी जीव मुक्त जीव की तरह अनंत सुखी होगा तो मोक्ष के लिए जो भगवान् का उपदेश एवं सिद्धि की साधना की जाती है वह भी निष्फल हो जायेगी। यदि शुद्ध निश्चयनय को मानते हुये व्यवहार नय को नहीं मानेंगे तो सिद्ध भगवान् तथा संसार में स्थित अभव्य मिथ्यादृष्टि कीड़े-मकोड़े, कुत्ता, सियार, सुअर, नारकी, पापी, कामी आदि जीवों में किसी में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं रहेगा। अभव्य जो सम्यग्दृष्टि तक कभी नहीं हो सकता तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है? इतना ही नहीं, संसार से मोक्ष, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मुनि व्रत, श्रावक व्रत, धर्म ध्यान, शुक्लध्यान आदि का भी लोप हो जायेगा।

यहाँ पर संक्षिप्त रूप में संसारी जीवों का वर्णन किया गया है। ऐसे जो जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत, अनादि अनिधन, अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप एवं अहिंसा प्रधान होने के कारण इस धर्म में जीवों का जितना सांगोपांग, व्यापक-सूक्ष्म वर्णन पाया जाता है ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता है। विशेष जिज्ञासु विस्तृत अध्ययन के लिए गोम्मटसार जीवकाण्ड, स्वतंत्रता के सूत्र (तत्त्वार्थ सूत्र) धवला आदि का अवलम्बन लें।

यहाँ पर जिन-जिन मुख्य प्रणालियों के माध्यम से जीवों का अन्वेषण शोध-बोध किया गया है उसका कुछ दिग्दर्शन मैं यहाँ कर रहा हूँ। यथा-

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवओगो विय कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा।।2।।

गोम्मटजीवकण्डे कर्णाटकवृत्ति। पृ.33

यहाँ चौदह गुणस्थान, अठानवें जीवसमास, छह पर्याप्ति, दश प्राण, चार संज्ञा, चार गति-मार्गणा, पाँच इन्द्रिय-मार्गणा, छह काय-मार्गणा, पन्द्रह

योग-मार्गणा, तीन वेद मार्गणा, चार कषाय-मार्गणा, आठ ज्ञान-मार्गणा, सात संयम-मार्गणा, चार दर्शन-मार्गणा, छह लेश्या-मार्गणा, दो भव्य-मार्गणा, छह सम्यक्त्व-मार्गणा, दो संज्ञी-मार्गणा, दो आहार-मार्गणा, दो उपयोग इस प्रकार ये जीव प्ररूपणा बीस कही है। प्रत्येक प्ररूपणा की निरुक्ति कहते हैं-'' गुण्यते अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्य से द्रव्यान्तर को जाना जाता है वह गुण है। कर्म की उपाधि की अपेक्षा सहित ज्ञान, दर्शन, उपयोगरूप चैतन्य प्राणों से जो जीता है वह जीव है। वे जीव जिनमें सम्यक्रूप से 'आसते' रहते हैं वे जीवसमास हैं।''परि'' अर्थात् समग्ररूप से आप्ति अर्थात् प्राप्ति पर्याप्ति है जिसका अर्थ है शक्ति की निष्पत्ति। जिनसे जीव ''प्राणन्ति जीते है अर्थात् जीवित व्यवहार के योग्य होते है वे प्राण हैं। आगम प्रसिद्ध वांछा या अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। जिनके द्वारा या जिनमें जीव ''मृगन्ते'' खोजे जाते है वे मार्गणा हैं। मार्गयिता-खोजने वाला तत्त्वार्थ का श्रद्धालु भव्य जीव है। ''मृग्य'' अर्थात् खोजने योग्य चौदह मार्गणावाले जीव है। मृग्यपने के कारणपने या अधिकरणपने को प्राप्त गति आदि मार्गणाओं में उन-उन मार्गणावाले जीवों को खोजा जाता है। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्य रूप उपयोग मार्गणा का उपाय है। इस प्रकार इन प्ररूपणाओं के सामान्य अर्थ का कथन किया।''

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-7)

1. गुणस्थान किसे कहते हैं?
2. जैनी गृहस्थ के गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
3. जैनी श्रावक के गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
4. मुनि के गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
5. ध्यानस्थ मुनि के गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
6. श्रेणी आरोहण के गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
7. सयोग केवली ग्रहस्थ के गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
8. अयोग केवली गुणस्थान के बारे में वर्णन करो।
9. ''सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया'' का रहस्य वर्णन करो।
10. इस अध्याय से क्या शिक्षायें मिली?

अष्टम परिच्छेद

जीव के सिद्ध स्वरुप एवं ऊर्ध्वगमन स्वभाव

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लायेग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता।।14।।
निष्कर्माणः अष्टगुणाः किञ्चिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः।
लोकग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः।।

The Siddhas or liberated Jivas) are void of Karmas, possessed of eight qualities, slightly less then the final body, eternal, possessed of Utpada (rise) and Vyaya(fall) and existent at the summit of Loka.

जो जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मो से रहित हैं, सम्यक्त्व आदि आठगुणों के धारक हैं तथा अन्तिम शरीर से कुछ कम हैं वे सिद्ध और ऊध्र्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, नित्य हैं तथा उत्पाद और व्यय इन दोनों से युक्त हैं।

इस गाथा में आचार्य श्री ने जीव के सिद्धत्त्व एवं ऊर्ध्वगमनत्व का वर्णन किया है। तेरहवीं गाथा के पूर्वार्ध में चौहदवें गुणस्थान तक का वर्णन किया गया है। सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि से 14 वें गुणस्थान तक संसार अवस्था है क्योंकि इस गुणस्थान में भी चार अघाति कर्म की सत्ता है। भले इस गुणस्थान में चार घाति कर्म न होने के कारण अनंत चतुष्टय प्रगट हो गया है एवं भाव मोक्ष भी हो गया है तथापि द्रव्य-मोक्ष एवं सम्पूर्ण मोक्ष नहीं हुआ है। 14 वें गुणस्थान के अंतिम समय में सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से जीव पूर्ण मुक्त हो जाता है। समस्त विरोधात्मक कर्म के अभाव से जीव के अनंत गुण प्रगट हो जाते हैं तथापि सिद्ध के आठ कर्म के अभाव से आठ विशेष गुण प्रगट होते हैं। यथा-

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।

1.सम्यक्त्व 2. अनंत ज्ञान 3. अनंत दर्शन 4. अनंत वीर्य 5. सूक्ष्मत्त्व 6. अवगाहनत्त्व 7. अगुरुलघुत्त्व 8. अव्याबाधत्त्व।

सिद्ध भगवान् में जो आठ गुण प्रगट होते हैं वे आठ कर्मो के सम्पूर्ण क्षय से प्रगट होते हैं। यथा-

	कर्म का अभाव	गुण प्रगट
1.	ज्ञानावरणीय कर्म	अनंत ज्ञान गुण
2.	दर्शनावरणीय कर्म	अनंत दर्शन गुण
3.	मोहनीय कर्म	सम्यक्त्व गुण
4.	अन्तराय कर्म	अनंत वीर्य गुण
5.	वेदनीय कर्म	अव्याबाधत्व गुण
6.	आयु कर्म	अवगाहनत्व गुण
7.	नाम कर्म	सूक्ष्मत्व गुण
8.	गोत्र कर्म	अगुरुलघुत्व गुण

सिद्ध भगवान् सम्पूर्ण कर्म से रहित होने के कारण अमूर्तिक हैं इसीलिये उनका मूर्तिक आकार नहीं है तथापि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड होने के कारण एवं प्रदेशत्व गुण होने के कारण उनका बहुत ही सुन्दर आकार होता है। वह आकार अंतिम शरीर से किंचित् न्यून (कुछ छोटा) है। भले संसारी जीवों के शरीर में यहाँ तक कि अर्हत् भगवान् के शरीर में भी छेद है, पोल है परन्तु सिद्ध भगवान् के आत्म प्रदेश में (सिद्धाकार में) किसी प्रकार छेद या पोल नहीं होता है। इसलिए सिद्ध भगवान् की प्रतिमा सुन्दर, सुरूचिपूर्ण, समचतुरस्त्र संस्थान युक्त घनाकार होती है। अरिहंत की प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्य, लांछन एवं केश आदि से युक्त होती है किन्तु सिद्ध प्रतिमा इन अष्ट प्रातिहार्यादि से रहित होती है। इनके अकृत्रिम सिद्ध प्रतिमायें होती हैं। नवदेवता में सिद्ध भगवान् की प्रतिमा होती है और अलग से भी सिद्ध भगवान् की प्रतिमा होती है।

कर्नाटक के शेडबाल में रत्नत्रय मंदिर में एक विशाल सिद्ध भगवान् की प्रतिमा है। होसदुर्ग में भी सिद्ध भगवान् की प्रतिमा है। वर्तमान में जो सिद्ध भगवान् की खोखली प्रतिमा बनाते हैं वह आगमोक्त नहीं है। खंडित प्रतिमा अपूज्यनीय है तो खोखली सिद्ध भगवान् की प्रतिमा में तो और भी अधिक आंगोपांग की कमी है तो वह प्रतिमा कैसे पूज्यनीय है?

अष्ट कर्म से रहित होते ही सिद्ध जीव 1 समय में 7 राजू दूरी को पार करके लोकाग्र में जाकर स्थिर हो जाते हैं।

ऊर्ध्वगमन करना जीव का स्वाभाविक गुण है तथापि कर्म परतंत्रता के कारण जीव विभिन्न गति में गमन करता है परन्तु कर्म से रहित होने से स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से ऋजुगति से गमन करता है कहा भी है-

पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेस बंधेहि सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसा वज्जं गदिं जंति।।

प्रकृति बन्ध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध, प्रदेश बंध से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होने के बाद परिशुद्ध, स्वतंत्र, शुद्धात्मा तिर्यक् आदि गतियों को छोड़ कर ऊर्ध्वगमन करता है।

स्वतंत्रता के सूत्र/मोक्षशास्त्र में मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन के विभिन्न कारण बताते हुये कहा है-

पूर्वप्रयोगादसंगत्त्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च।।6।।

पूर्व प्रयोग से, संग का अभाव होने से बन्धन टूटने से, वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है।

संसारी जीव ने मुक्त होने से पहिले कितनी ही बार मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया है, अतः पूर्व का संस्कार होने से जीव ऊर्ध्वगमन करता है। जीव जब तक कर्मभार सहित रहता है तब तक संसार में बिना किसी नियम के गमन करता है और कर्मभार से रहित हो जाने पर ऊपर को ही गमन करता है। अन्य जन्म के कारणभूत गति, जाति आदि समस्त कर्मबन्ध के उच्छेद हो जाने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है। आगम में जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगमन करने वाला बताया है। अतः कर्म नष्ट हो जाने पर अपने स्वाभाविक अवस्था के कारण मुक्तात्मा का एक समय तक ऊर्ध्वगमन होता है।

भगवती आराधना में कहा गया है-

तं सो बंधणमुक्को उड्ढंजीवो पओगदो जादि।
जह एरण्डयबीयं बंधणमुक्कं समुप्पगदि।।2121।।

इस प्रकार बन्धन से मुक्त हुआ वह जीव वेग से ऊपर को जाता है जैसे बन्धन से मुक्त हुआ एरण्ड का बीच ऊपर को जाता है।

संगउ विजहणेण य लहुदयाए उड्ढं पयादि सो जीवो।
जध आलाउ अलेओ उप्पददि जले णिबुड्ढो वि।।2122।।

समस्त कर्म, नो कर्मरूप भार से मुक्त होने के कारण हल्का हो जाने से वह जीव ऊपर को जाता है। जैसे मिट्टी के लेप रहित तूम्बी जल में डूबने पर भी ऊपर ही जाती है।

झाणेण य तह अप्पा पओगदो जेण जादि सो उड्ढं।
वेगेण पूरिदो जहठाइदुकामो विय ण ठादि।।2123।।

जैसे वेग से पूर्ण व्यक्ति ठहरना चाहते हुए भी नहीं ठहर पाता है वैसे ही ध्यान के प्रयोग से आत्मा ऊपर जाता है।

जह वा अग्गिस्ससिहा सहावदो चेच होहि उड्ढं गदी।
जीवस्स तह सभावों उड्ढगमणमप्पवसियस्स।।2124।।

अथवा जैसे आग की लपट स्वभाव से ही ऊपर जाती है वैसे ही कर्म रहित स्वाधीन आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन है।

तो सो अविग्गहाए गदीए समए अणंतरे चेव।
पावदि लोयस्स सिहरं खित्तं कालेण य फुसंतो।।2125।।

कर्मो के क्षय होते ही वह मुक्त जीव एक समय वाली मोड़े रहित गति से सात राजू प्रमाण आकाश के प्रदेशों का स्पर्श न करते हुए अर्थात् अत्यन्त तीव्र वेग से लोक के शिखर पर विराजमान हो जाता है।

शुद्ध जीव एवं शुद्ध परमाणु तीव्र गति से गमन करने पर एक समय में 14 राजू (विश्व के एक छोर से अन्य अन्तिम छोर अर्थात् असंख्यात आलोक वर्ष) गमन कर सके हैं। परन्तु मर्त्य-लोक के अढ़ाई द्वीप से जीव सिद्ध होता है, मध्य लोक से लोकाग्र 7 राजू है इसलिए सिद्ध भगवान् 7 राजू गमन करते हैं। समय का कोई भेद नहीं होता है इसलिए 7 राजू गमन के लिये भी 1 समय लगता है। यह सूक्ष्म गणितीय

सिद्धान्त है। परमाणु जघन्य रूप में एक प्रदेश से लेकर उत्कृष्ट रूप से 14 राजू गमन कर सकता है अर्थात् मध्य में इसके असंख्यात भेद हो जाते हैं। यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि सिद्ध भगवान् में अनंत शक्ति, ऊर्ध्वगमनत्व शक्ति रहते हुए एवं आकाश और काल अनंत होते हुए भी सिद्ध भगवान् 7 राजू गमन करके लोकाकाश के अन्तिम में क्यों स्थित हो जाते हैं? इसका धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण यह है कि गमन करने के लिए अन्तरंग और बहिरंग कारण चाहिए। बहिरंग कारण में बाह्य उदासीन निमित्तभूत धर्मास्तिकाय का अभाव है। इसलिए उदासीन निमित्त कारणों से सिद्ध जीव लोकाकाश से एक प्रदेश भी आगे गमन नहीं कर पाते हैं। कहा भी है-

धर्मास्किायाभावात्। (8)

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता।

गत्युपग्रहकारकभूतो धर्मास्कियो नोपर्यस्तीत्यलोके गमनाभावः।
तद्भावे च लोकालोक विभागाभावः प्रसज्यते।।

गति के उपकार का कारणभूत धर्मास्तिकाय लोकान्त के ऊपर नहीं है इसलिए मुक्त जीव का अलोक में गमन नहीं होता और यदि आगे ध ार्मास्तिकाय का अभाव होने पर भी अलोक में गमन माना जाता है जो लोकालोक के विभाग का अभाव प्राप्त होता है।

न धर्माभावतः सिद्धा गच्छन्ति परतस्ततः।
धर्मोहि सर्वदा कर्त्ता जीव पुद्गलयोर्ग तेः।।

त्रैलोक्य के अन्त तक धर्मास्तिकाय होने से सिद्ध जीवों की गति लोकान्त तक ही होती है। अलोक में जीव और पुद्गल के गति हेतु का अभाव होने से लोक के ऊपर गति नहीं होती। विशेष जिज्ञासु के लिए मेरा (कनकनन्दी) '' विश्व विज्ञान रहस्य'' एवं ''स्वतंत्रता के सूत्र'' अवलोकनीय है।

उपर्युक्त सिद्धांत से यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक कार्यों के लिए

जितने अन्तरंग एवं बहिरंग कारण चाहिये उनका सद्‌भाव भी चाहिये और विरोध कारण का अभाव भी चाहिये उसके बिना कार्य नहीं हो सकता है। जो एकान्त्वादी मानते हैं कि केवल उपादान कारण से कार्य होता है, निमित्तों की आवश्यकता नहीं है उनके लिए यह विषय एक अजेय चुनौतीपूर्ण है। क्योंकि सिद्ध भगवान् में पूर्ण उपादान कारण है तो भी गमन नहीं होने के कारण उदासीन कारण का नहीं होना है। यदि उदासीन कारण से सिद्ध भगवान् गमन नहीं कर पाते हैं तो अन्य-अन्य कार्यो के लिये क्या यथा योग्य कारण नहीं चाहिये? अवश्य चाहिये।

सिद्ध भगवान् समस्त कर्मो से रहित होने के कारण उनमें अशुद्ध उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य नहीं है तथापि सिद्ध अवस्था में भी शुद्ध रूप में उत्पाद, व्यय ध्रौव्यशीलता है। तत्त्वार्थ सूत्र में द्रव्य का लक्षण विभिन्न दृष्टिकोण से बताते हुए कहा भी है-

सद्द्रव्य लक्षणम्। (29)

द्रव्य का लक्षण सत् है।

Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another form or into one another.

विज्ञान के मूलभूत सिद्धांत यह है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियदि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।।(9) पंचास्तिकाय।।

What flows or maintains its identity through its serveral qualities and modifications, and what is not different from Satta or substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्‌भावपर्यायों को जो द्रवित होता है-प्राप्त होता है उसे द्रव्य कहते हैं-जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। (30)

mRikn&Sat (is a) simultaneous possession (of) comning into existence birth

व्यय-Going our ot existence, decay, and

ध्रौव्य-Continiuous sameness of existence, permanence.

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है वह सत् है।

द्रव्य सत् स्वरूप होने के कारण द्रव्य अनादि से है तथा अनंत तक रहेगा। तथापि यह सत् अपरिवर्तन नहीं है, बल्कि नित्य परिवर्तनशील है। नित्य परिवर्तनशील होते हुए भी इसका नाश नहीं होता है। इसलिये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का सदा सद्भाव होता है इसलिये सदा सत् स्वरूप ही रहता है।

उत्पाद-स्वजाति को न छोड़ते हुए भावान्तर पर्यायान्तर की प्राप्ति उत्पाद है। चेतन या अचेतन द्रव्य का स्वजाति को न छोड़ते हुए भी जो पर्यायान्तर की प्राप्ति है वह उत्पाद है। जैसे-मृत्पिण्ड में घट पर्याय अर्थात् मिट्टी जैसे अपने मिट्टी स्वभाव को न छोड़कर घट पर्याय में उत्पन्न होती है वह घट उसका उत्पाद है। उसी प्रकार जीव या पुद्गलादि अजीव पदार्थ अपने स्वभाव को न छोड़कर पर्यायान्तर से परिणमन करते हैं।

व्यय-उसी प्रकार स्वजाति को न छोड़ते हुये पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय कहते हैं। स्वजाति को न छोड़ते हुये चेतन वा अचेतन पदार्थ की पूर्व पर्याय का जो नाश होता है वह ''व्यय'' है। जैसे कि घट की उत्पत्ति होने पर मिट्टी के पिण्डाकार का नाश होता है।

ध्रौव्य-ध्रुव-स्थैर्य कर्म का स्थिर रहना ध्रौव्य है। अनादि पारिणामिक स्वभाव से व्यय और उत्पाद का अभाव है अर्थात् अनादि पारिणामिक स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य का उत्पाद-व्यय नहीं होता है। द्रव्य ध्रुव रूप से रहता है अर्थात् स्थिर रहता है उसको ध्रुव कहते हैं और ध्रुव का जो भी भाव या कर्म है, वह ध्रौव्य कहलाता है। जैसे कि पिण्ड और घट दोनों अवस्थाओं में मृदुपना का अन्वय रहता है।

अगुरुलघु गुण के कारण भी सिद्ध भगवान् में उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता है। ज्ञेयों में जो परिवर्तन होता है उसके अनुसार ज्ञान में परिवर्तन होता है उस अपेक्षा से भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है।

अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद-8)

1. सिद्ध के कौन से कर्म के अभाव से कौन से गुण प्रकट होते हैं?
2. सिद्ध भगवान् ऊर्ध्वगमन क्यों करते हैं?
3. सिद्ध भगवान् अलोकाकाश में क्यों गमन नहीं करते हैं?
4. सिद्ध भगवान् कैसे बनते हैं?
5. सिद्ध भगवान् के गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीव-समासादि क्यों नहीं है?

परिशिष्ट

भक्त की भक्ति जब सिर चढ़ती है तो वैज्ञानिक संगोष्ठी हेतु बनाए पेपर की जरूरत नहीं होती है। शब्द सुमन से झरते है, दिल और दिमाग से परे, आत्मा-परमात्मा से परे जब कोई भक्त अपने गुरु में ढुंढता है। ईश्वर स्वयं सोचने पर मजबूर हो जाता है तब किसी राम के हाथों शबरी का उद्धार होता है। यद्यपि मैंने श्रीमान् कृष्णावत जी के उद्गार शब्दों में पिरोने का प्रयास किया है, कदाचित् प्रस्तुत गद्य में किसी शब्द या वाक्य में श्रीमान् कष्णावत् जी के भावों का अतिक्रमण या कमी हुई हो, तो उसके लिए मैं सनम्र हृदय से उनसे एवं आचार्यश्री से क्षमा प्रार्थी हूँ।

--- प्रस्तुतिकत्री चेतना जैन

तेरहवीं अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-दशन-विज्ञान संगोष्ठी, 2014

आदिनाथ भवन, हिरणमगरी, सेक्टर-11, उदयपुर (राजस्थान)

जैन सिद्धान्त परम विज्ञान, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे

परम पूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव के लिये उद्गार(वक्तव्य)

दि. 11.11.2014

श्री मनोहरसिंह कृष्णावत, पूर्व प्रबन्ध निर्देशक, भूपाल नोबल्स संस्थान, उदयपुर

श्रीमान् कृष्णावत जी के अनुसार :-

आचार्य श्री ज्ञानी विज्ञानियों के ही गुरु नहीं, ये मुर्खो के भी गुरुवर है। गुरु हमें जो देता है, उसकी कल्पना करना मुश्किल है। जब हम सोते हैं, तो गुरु जागता है, मंथन करता है, ज्ञान-ध्यान की खेती करता है, वो ही हमें सबेरे दिखता है। गुरु रात को चिन्तन की खेती करते हैं, प्रभात में फसल उगाते हैं, वही हमें परोसते हैं।

एक बार सर्वप्रथम थाणा (चावण्ड) में गुरु का पदार्पण हुआ। मुझे किसी व्यक्ति ने बताया कि यहाँ वैज्ञानिक मुनि आये हैं। हम उनके दर्शन करने के लिए चले। वहाँ गये तो आचार्य श्री के चतुर्दशी का मौन था। आचार्य श्री ने जब मुझे देखा, मेरे से वार्तालाप में इतना वात्सल्य प्रकट

किया जैसे गुरुवर को कोई खिलौना मिल गया। वो मुझसे खेलने लगे, मेरे से चर्चा करने हेतु प्रसन्न होकर आपने अपना मौन तक तोड़ लिया। आनन्दित होकर मेरे से वार्ता की।

जैन धर्म क्षत्रियों का धर्म है। मैं भी क्षत्रिय हूँ इस नाते जैन धर्म पर पहला अधिकार मेरा है। वस्तुतः जैन धर्म क्षत्रियों का ही है क्योंकि सभी तीर्थंकर क्षत्रिय थे। मार्ग से भटकने के कारण हमारे पूर्वजों की गलतियों के कारण यह धर्म आज आपके हाथों में आया है। हम भटक गये थे। भटके हुये व्यक्ति को पुनः मंजिल पर आने का अधिकार है। हम जैसों को सही राह पर आचार्य श्री आप ही ला सकते हैं।

सच्चे गुरु को कैसे पाया –

मैंने पूरा विश्व भ्रमण किया, गाँठ का एक पैसा नहीं लगाया, क्योंकि कोई मेहमान अपना पैसा खर्च नहीं करता है। हम इस धरती पर भगवान् के भेजे हुये मेहमान है। हम इस संसार में भगवान् के मेहमान हैं हमारा हक है कि हम संसार की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, स्थान,संत को हम जाने। उसके लिये त्याग की आवश्यकता है। हम ऐसा अपना व्यवहार बनायें। लोभ, मान, कषाय से परे होकर सोचे। ऐसे गुरु को आंख बन्द करके महसुस करना पड़ता है। सही मंजिल का पता है तो टिकिट ले लिया है, वहाँ ट्रेन में बैठ गये हैं, सही स्थान पर मंजिल, गंत्वय पर पहुँचने के बारे में अब नहीं सोचना है, वो तो हम निश्चित ही पहुँचेंगे। मोक्ष के पथ पर एरोप्लेन में बैठने से पहले सही टिकिट सही स्थान से लेना आवश्यक है।

हमें आँख बन्द करके ईश्वर को महसुस करना पड़ता है। ध्यान बढ़ाना होगा। एकाग्रता बढ़ानी होगी। मन को वश में करना होगा। मैं सोचता हूँ, लोग मुर्दे के साथ जाते है, राम नाम सत्य बोलते है। अगर जिंदा व्यक्ति यह सोचने लग जाये तो उसके आने वाले भव भी सुधरेंगे। मैं ध्यान में अपने मन को शमशान बना देता हूँ। मन के साथ तल को तोड़ता हूँ, तन ऊपर है, वृक्ष अन्दर। उसे फटकारता हूँ। उसमें जो झाड़ियाँ है, जानवर है, छल, कपट, मान माया रूपी विषैले जानवर को मारता हूँ और शाम को अर्थी के रूप में उन्हें जलाता हूँ और बोलता हूँ, राम नाम सत्य

है। शमशान के इस तांडव में आनंदित होता हूँ। गुरुवर मेरी एक पीड़ा है। अच्छे व्यक्ति ही भगवान् के मेहमान होते है, जो अच्छे कर्म करते हैं। अतएव मनुष्य को अच्छे कर्म करने चाहिये।

मैं मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा, संत, फकीर, मौला सभी के पास गया हूँ। लेकिन अन्तिम निष्कर्ष यह पाया कि आचार्य श्री के जैसा कोई संत नहीं है।

आचार्य श्री सबसे बड़े है। आप सभी को यदि अपना मोक्ष कराना है तो आचार्य श्री की शरण लेनी होगी। प्रत्येक आत्मा को परमात्मा बनने का अधिकार है। ईश्वर ने गुरु-रूपी जनरेटर ऊपर से भेजा है। इनको वायर एवं इलेक्ट्रिसिटी की आवश्यकता है। ये हमें पॉवर भेजते रहते हैं।

जैन धर्मावलम्बियों को लक्ष्य करते हुये श्रीमान् कृष्णावत जी ने कहा कि जैन धर्म संकुचित होकर क्यों रह गया? अपने आपको अल्पसंख्यक मे खड़ा कर, क्या अहिंसा को बढ़ाना चाहते हैं या हिंसा को? यदि ऐसा है तो अहिंसा का सिद्धान्त कहीं नहीं रहेगा। जैन धर्म जब बहुसंख्यक समुदाय में रहेगा तथी हिंसा खत्म होगी। आप बाहर जाकर देखें हिंसा कितनी है? जिन्दगी की साँसे गिनती की ही है। मोक्ष मे जाने का रास्ता सर्वप्रथम जानना चाहिये। मेरा यह प्रश्न भगवान् से है, गुरु से है। मेरा जैसा मूर्ख विद्वानों में बोल रहा है। कालिदास उस समय डाली काट रहा होगा। परन्तु गुरुवर हमें किससे डर है ? हमें डरना नहीं, जागना पड़ेगा। हमें अपने कार्यो के लिये किसी की आज्ञा नहीं चाहिये, आप सामर्थ्यवान् बने और आगे बढ़े। हमें अवश्य आगे कदम बढ़ाना चाहये।

जब अर्जुन ने कृष्ण से पूछा कि तुम मेरे में क्या देखते हो? तो अर्जुन ने उस समय नहीं बताया क्योंकि उनका जो रूप है, वह आज संसार देख रहा है। मैं भी भविष्य वक्ता हूँ। जो आप(आचार्यश्री) के अन्दर विलक्षणता के मानदंड व चिह्न जो मैं देख रहा हूँ वह मैं आपको अभी नहीं बताऊंगा लेकिन आने वाले समय में वह सब कुछ समाज देखेगा। आप हमेशा शिष्य को परखते है लेकिन शिष्य भी गुरु को परखता है यानि पुत्र भी पिता को समझता है टटोलता है। शिष्य गुरु को नोटिस करता है। मैं आप(आचार्यश्री) का भविष्य देख रहा हूँ। गुरुदेव आपके शारीरिक लक्षण

श्रीकृष्ण से मिलते हैं। आपमें जो विलक्षणता है, वह इस तरह है कि जैसे ऋषि, मुनि, संत, सूरदास, रैदास, मीरा जो महान् संतों में थी, उन्होंने भक्ति व ज्ञान से समाज में नई चेतना दी। ऐसे युग पुरुष होते है, जिससे मानव समाज की नई चेतना बनी रहती है, लोगों को जीने की राह बताते है। इन संतो को हुये आज 500 वर्ष होने आये हैं एवं ऐसा देखा गया है कि प्रत्येक 500 वर्ष में इसी प्रकार युगदृष्टा व सत पुरुष हुये हैं। मैं अभी यह गुण आप आचार्य श्री में देख रहा हूँ और दावे के साथ कहता कि वह आप ही है। आपको आगे बहुत कुछ करना हैं। हम जैसों को मार्ग बताना है कि हमें कैसे जीना चाहिए ? आप ऐसा न कर पाए तो भगवान् आपसे पूछेगा कि आपने यह कार्य क्यों नहीं किया? आपकी यही शिक्षा दीक्षा, मार्गदर्शन, ज्ञान एवं प्रेरणा का काल आगामी 500 वर्षो तक बना रहेगा, यह मैं देख रहा हूँ।

हम अंधकार में भटके हुये लोगों को सही मार्ग बतायें, अहिंसा की पताका संसार के कोने-कोने में फैले और हिंसक व्यक्ति एक कोने में दुबक जाये और अपनी जान बचाने हेतु मारे-मारे फिरे।

" शीष दे, गुरु मिले तो भी सस्ता जान "

ये मैं ही हूँ

तिनके के जैसे बहे जा रहा हूँ ।
जिन्दगी को यूँ ही जिये जा रहा हूँ ।
कहाँ से आया हूँ, जाना कहाँ है
हालातों के थेपेड़ों को सहे जा रहा हूँ ।

आंधी ने उड़ाया, दरिया ने बहाया
हर पल यूँ हीं मिटे जा रहा हूँ ।
हस्ती है न कोई, न कश्ती, न किनारा।
डूबते का सहारा बने जा रहा हूँ ।

इस समन्दर में मांझी है न कोई सहारा
आशाओं के भंवर में डूबे जा रहा हूँ ।
ये गगन, ये पंछी, बहलाते मुझे
परायों में अपने से लगते मुझे
यूं ही अपनों की तलाश में भटकते जा रहा हूँ ।

कोई आस है न, कोई उम्मीद है
मिट जाऊं तो कोई गम नहीं है,
खुदा जाने किसलिये जिये जा रहा हूँ।

आज एक पंछी ने देखा मुझे
खुशी से मिट जाने को जी चाहता हैं
क्योंकि नीड़ की, मैं नींव बनने जा रहा हूँ ।

––– चन्द्रेश जैन